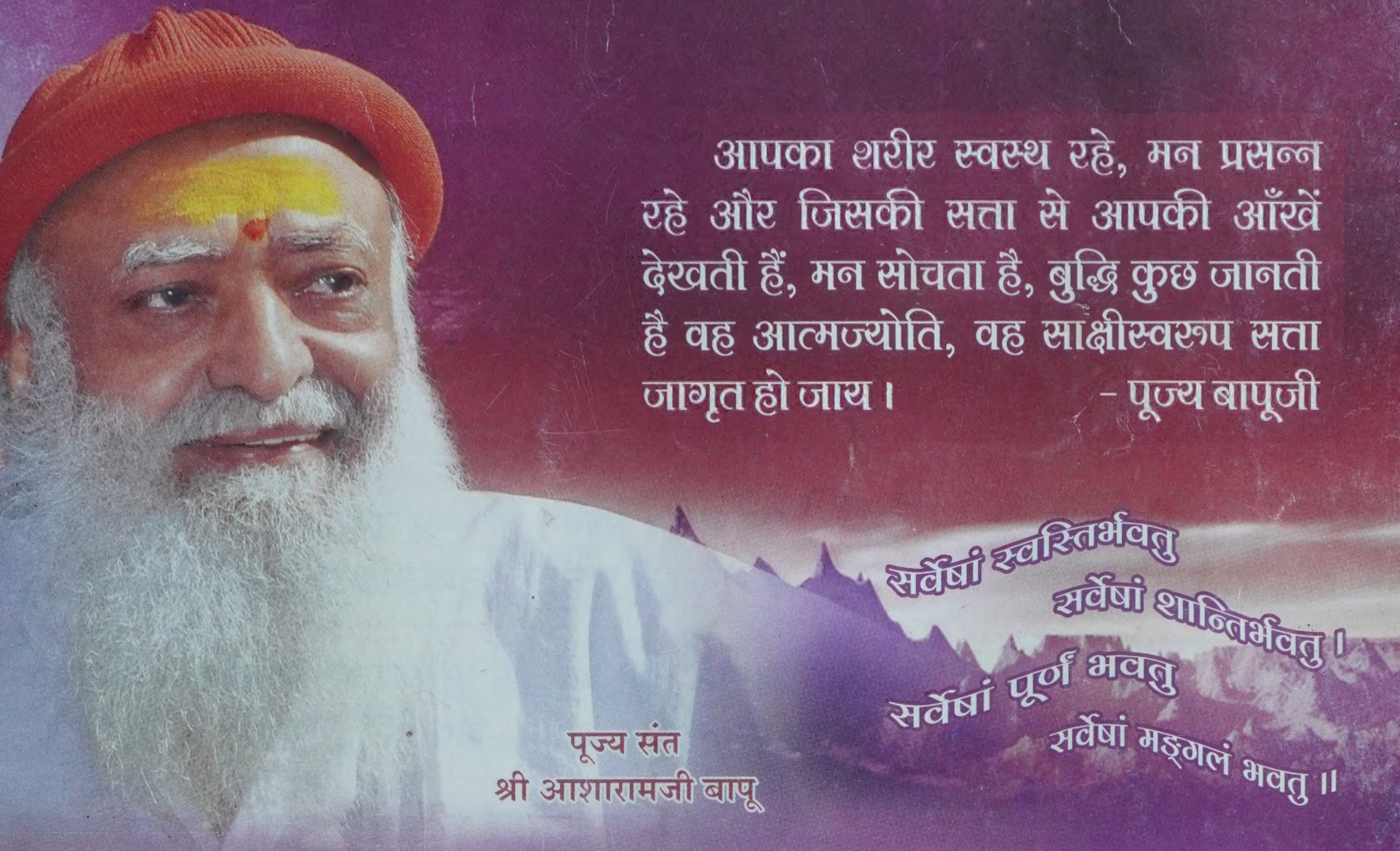
संत श्री आशारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

मूल्य : ₹ ६ भाषा : हिन्दी
प्रकाशन दिनांक : १ जून २०२१
वर्ष : ३० अंक : १२
(निरंतर अंक : ३४२)
पृष्ठ संख्या : ३६ (आवरण पृष्ठ सहित)

ऋषि प्रसाद



आपका शरीर स्वस्थ रहे, मन प्रसन्न रहे और जिसकी सत्ता से आपकी आँखें देखती हैं, मन सोचता है, बुद्धि कुछ जानती है वह आत्मज्योति, वह साक्षीस्वरूप सत्ता जागृत हो जाय। - पूज्य बापूजी

सर्वेषां स्वस्तिर्भवतु
सर्वेषां शान्तिर्भवतु ।
सर्वेषां पूर्णं भवतु
सर्वेषां मङ्गलं भवतु ॥

पूज्य संत
श्री आशारामजी बापू

स्वास्थ्यरक्षक दैवी उपाय

पढ़ें पृष्ठ ३०



योगासन, सूर्यनमस्कार

अभिमंत्रित जल-सेवन

अग्निसार क्रिया

काढ़ा-सेवन

सूर्य-स्नान

प्राणायाम

[प]रिस्थितियों के [अ]सर से [करें] बेअसर १२
आत्मबल कैसे जगायें ? १४
सत्संग परम औषध है ६
बुखार दूर करने हेतु... ३३
एकादशी को चावल खाना वर्जित क्यों ? २२



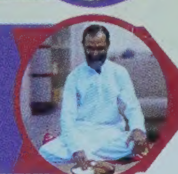
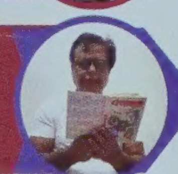
संत आशारामजी को अब तक ज़मानत नहीं मिली यह बड़े दुःख की बात है। - श्री राधामोहन शरण देवाचार्यजी, मथुरा



भारत के अंदर अन्याय कहा जाय तो वह आशारामजी बापू पर किया गया है।
- श्री श्री १००८ महामंडलेश्वर श्री महंत लक्ष्मणदासजी, इंदौर

उत्तम स्वास्थ्य, रोगप्रतिकारक शक्ति एवं दीर्घायुष्य की प्राप्ति हेतु

पूज्य बापूजी द्वारा निर्देशित दिनचर्या

समय एवं जीवनीशक्ति की विशेष सक्रियता	करणीय व अकरणीय कार्य
प्रातः ३ से ५ फेफड़ों में 	थोड़ा गुनगुना पानी पीकर खुली हवा में घूमना एवं प्राणायाम करना। इ शरीर स्वस्थ व स्फूर्तिमान होता है। ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाले लोग बुद्धि व उत्साही होते हैं और सोते रहनेवालों का जीवन निस्तेज हो जाता है।
सुबह ५ से ७ बड़ी आँत में 	प्रातः जागरण से लेकर सुबह ७ बजे के बीच मल-त्याग व स्नान कर लें। सुबह ७ बजे के बाद जो मल-त्याग करते हैं उन्हें अनेक बीमारियाँ घेर लेती हैं।
सुबह ७ से ९ आमाशय या जठर में 	दूध या फलों का रस या कोई पेय पदार्थ ले सकते हैं। (भोजन के २ घंटे पूर्व)
सुबह ९ से ११ अग्न्याशय व प्लीहा में 	यह समय भोजन के लिए उपयुक्त है। भोजन के बीच-ब में गुनगुना पानी (अनुकूलता अनुसार) घूँट-घूँट पियें।
दोपहर ११ से १ हृदय में 	दोपहर १२ बजे के आसपास मध्याह्न-संध्या करने क विधान है। ध्यान, जप करें। भोजन वर्जित है।
दोपहर १ से ३ छोटी आँत में 	भोजन के करीब २ घंटे बाद प्यास-अनुरूप पानी पीना चाहिए।
दोपहर ३ से ५ मूत्राशय में 	२-४ घंटे पहले पिये पानी से इस समय मूत्र-त्याग की प्रवृत्ति होगी।
शाम ५ से ७ गुर्दों (kidneys) में 	इस समय हलका भोजन कर लेना चाहिए। सूर्यास्त के १० मिनट पहले से १० मिनट बाद तक (संध्याकाल में) भोजन न करें अपितु संध्या करें।
रात्रि ७ से ९ मस्तिष्क में 	इस समय मस्तिष्क विशेषरूप से सक्रिय रहता है। अतः प्रातःकाल के अलावा इस काल में पढ़ा हुआ पाठ जल्दी याद रह जाता है।
रात्रि ९ से ११ मेरुरज्जु में 	इस समय की नींद सर्वाधिक विश्रांति प्रदान करती है।
रात्रि ११ से १ पित्ताशय में 	इस काल में जागरण पित्त बढ़ाता है। इस समय नयी कोशिकाएँ बनती हैं।
रात्रि १ से ३ यकृत (liver) में	इस काल में जागरण से पाचनतंत्र बिगड़ता है।

ऋषियों व आयुर्वेदाचार्यों ने बिना भूख लगे भोजन करना वर्जित बताया है। अतः सुबह एवं शाम के भोजन की मात्रा ऐसी रखें जिससे ऊपर बताये समय में खुलकर भूख लगे।

ऋषि प्रसाद

हिन्दी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, तेलुगु, कन्नड़, अंग्रेजी व बंगाली भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : ३० अंक : १२ मूल्य : ₹ ६
भाषा : हिन्दी निरंतर अंक : ३४२
प्रकाशन दिनांक : १ जून २०२१
पृष्ठ संख्या : ३६ (आवरण पृष्ठ सहित)
ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. २०७८

स्वामी : संत श्री आशारामजी आश्रम
प्रकाशक : धर्मेश जगराम सिंह चौहान
मुद्रक : राघवेन्द्र सुभाषचन्द्र गादा
प्रकाशन स्थल : संत श्री आशारामजी आश्रम, मोटेरा, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात)
मुद्रण स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चरर्स, कुंजा मतरालियों, पौंटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)-१७३०२५
सम्पादक : श्रीनिवास र. कुलकर्णी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे.खो. मकवाणा
संरक्षक : श्री सुरेन्द्रनाथ भार्गव
पूर्व मुख्य न्यायाधीश, सिक्किम; पूर्व न्यायाधीश, राज. उच्च न्यायालय; पूर्व अध्यक्ष, मानवाधिकार आयोग, असम व मणिपुर

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। **अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट ('हरि ओम मैन्युफेक्चरर्स' (Hari Om Manufactureres) के नाम अहमदाबाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।**

सम्पर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', संत श्री आशारामजी आश्रम, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुज.)
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ६१२१०८८८
केवल 'ऋषि प्रसाद' पूछताछ हेतु : (०७९) ६१२१०७४२
७९९१२१०७१४ 'Rishi Prasad'
ashramindia@ashram.org
www.ashram.org www.rishiprasad.org

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित) भारत में

अवधि	हिन्दी व अन्य	अंग्रेजी
वार्षिक	₹ ६५	₹ ७०
द्विवार्षिक	₹ १२०	₹ १३५
पंचवार्षिक	₹ २५०	₹ ३२५
आजीवन (१२ वर्ष)	₹ ६००	---

विदेशों में (सभी भाषाएँ)

अवधि	सार्क देश	अन्य देश
वार्षिक	₹ ६००	US $ 20
द्विवार्षिक	₹ १२००	US $ 40
पंचवार्षिक	₹ ३०००	US $ 80

इस अंक में...

❖ परिप्रश्नेन... ४
❖ सद्गुरु के शब्दमात्र से उद्धार होता है - संत दादू दयालजी ५
❖ इच्छा बदलने से भगवत्प्राप्ति - साँईं श्री लीलाशाहजी महाराज ५
❖ सत्संग परम औषध है ६
❖ तुम यह उत्तम सेवा कर सकते हो ! ७
❖ गीता अमृत ✻ उनका योगक्षेम सर्वेश्वर स्वयं वहन करते हैं ८
❖ आपका व्यक्तित्व परमानंद है १०
❖ श्रद्धा संजीवनी ✻ ऐसा होता है उत्तम श्रद्धालु ११
❖ आप जितना चाहें उतने महान हो सकते हो १२
❖ परिस्थितियों के असर से रहें बेअसर १२
❖ आत्मबल कैसे जगायें ? १४
❖ संत महिमा १५
✻ ''शहर को महामारियों से बचाना असम्भव था लेकिन...''
❖ ऋषि ज्ञान प्रसाद ✻ इस सेवा का लाभ अवश्य लें - जोतीराम १६
❖ योग-वेदांत-सेवा १७
✻ सेवा पराधीनता नहीं, स्वातंत्र्य का एक विलक्षण प्रकाश है
❖ विद्यार्थी संस्कार ✻ पुण्य क्या, पाप क्या ? १८
✻ सीखने के लिए या मिटने के लिए ?
✻ ये दोनों दुर्लभ हैं ✻ कैसे हो निरंतर भगवच्चिंतन ?
❖ युवा जागृति संदेश ✻ शरीर की अपवित्रता और भावों की पवित्रता २०
❖ महिला उत्थान ✻ परलोक के भोजन का स्वाद २१
❖ संस्कृति विज्ञान ✻ एकादशी को चावल खाना वर्जित क्यों ? २२
❖ सद्गुरु महिमा ✻ ऐसे समर्थ सद्गुरु व साधक विरले ही होते हैं २३
❖ परमात्मप्राप्ति में बाधक असुर और उन्हें मारने के उपाय २४
❖ काव्य गुंजन ✻ तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ - संत पथिकजी २५
❖ संतों की हितभरी अनुभव-वाणी २६
❖ शास्त्र दर्पण ✻ गृहस्थ कौन और वैरागी कौन ? २७
❖ उपासना अमृत ✻ नित्य उपासना की आवश्यकता क्यों ? २८
❖ दैवी चिकित्सा (शरीर स्वास्थ्य) ✻ स्वास्थ्यरक्षक दैवी उपाय ३०
✻ यह समझ होगी तो पेट ठीक रहेगा
❖ अनमोल कुंजियाँ ✻ समस्त रोगनाशक उपाय ३३
✻ ज्वरनाशक मंत्र ✻ बुखार दूर करने हेतु...
✻ विद्यालाभ व अद्भुत विद्वत्ता की प्राप्ति हेतु
❖ ...तभी साधक अपने परम लक्ष्य तक पहुँच पाता है ३४
❖ हलकी आदतें, चिंतित स्वभाव, बीमारी आदि सब गायब ! ३४



साधिका : बापूजी ! हमें पता है कि संसार नश्वर है, जो कुछ हमें भास रहा है वह सब नष्ट होनेवाला है फिर भी मन इसीकी ओर बार-बार क्यों दौड़ता है ?

पूज्य बापूजी : यह आपने सुना है, अभी ठीक से जाना नहीं है, ठीक से माना नहीं है। जैसे साँप आ जाय और कोई कहे कि 'रुके रहो' तो भी आप भाग जाते हैं क्योंकि आप ठीक से मानते हैं कि साँप काटेगा तो हानि होगी। ऐसे ही यह अभी आपने सुना है कि 'संसार नश्वर है, मिथ्या है' किंतु पुरानी वासनाएँ हैं, आकर्षण है इसलिए बार-बार मन उधर जाता है। 'क्यों जाता है, कैसे जाता है ?' इस पचड़े में मत पड़ो। जहाँ भी जाय, 'सब मिथ्या है।' ऐसा दृढ़ता से मान लो। संसार में यथायोग्य व्यवहार करो। आप बेटी हो तो माँ के साथ निभाओ, पत्नी हो तो पति के साथ निभाओ, बहन हो तो बहन के साथ निभाओ। इनके साथ कम-से-कम समय में निभा के जीवात्मा हो तो परमात्मा के साथ निभा के एकाकार हो जाओ, इसमें क्या चिंता की बात है ? जिससे बिछुड़ नहीं सकते उसीमें शांत, आनंदित... 'ऐसा क्यों, वैसा क्यों ?...' इस पचड़े में मत पड़ो, चलने दो। जिसको संसार सच्चा लगता है उसके लिए संसार महानरक है, दुःखालय है, अशाश्वत है, अनित्य है किंतु जिनको परमात्मा सत्य लगता है उनके लिए संसार वासुदेवमय है। तो संसार को भोगी की दृष्टि से देखो तो वह तुम्हें तुच्छ बना देता है इसलिए बड़ा तुच्छ है और भक्त व तत्त्ववेत्ता की दृष्टि से देखो तो सब वासुदेव की लीला है।

साधक : गुरुजी ! सत्संग में सुना है कि 'मैं चैतन्य आत्मा हूँ, मुक्तात्मा हूँ' फिर भी प्रतिकूलता आती है तो दुःख होता है और अनुकूलता आती है तो सुख होता है - ऐसा क्यों होता है ?

पूज्य बापूजी : 'यह मेरे को होता है' ऐसा सोचो ही नहीं बल्कि ऐसा सोचो कि 'अनुकूलता का सुख इन्द्रियों को होता है, मन को होता है। प्रतिकूलता का दुःख भी इन्द्रियों और मन को होता है और इन इन्द्रियों और मन में मैं हूँ आभासमात्र, परमात्मरूप से मैं हूँ सत्। इन्द्रियों और मन के बहकावे में आना मेरी पुरानी आदत है। इस आदत के कारण सुख-दुःख होता है तो होता है लेकिन वह हो-हो के चला जाता है। दुःख भी नहीं टिकता और सुख भी नहीं टिकता पर जो टिकता है वह मेरा परमात्मा और मैं ज्यों-के-त्यों हैं, फिक्र किस बात की !' ❑

चिंतन-कणिकाएँ - पूज्य बापूजी

✻ नश्वर चीजें जितनी भी मिलती हैं उतनी गुलामी और बढ़ा देती हैं लेकिन परमात्मा घड़ीभर के लिए भी मिलता है तो सदा-सदा के लिए बेडा पार कर देता है।

✻ दुनिया का धन-वैभव जहाँ काम नहीं देता वहाँ आत्मवैभव, आत्मप्रसाद परलोक में भी जीव की रक्षा करता है।

✻ विषयों की आसक्ति, जगत में सत्यबुद्धि यह बंधन का कारण है और विषयों में वैराग्यवृत्ति, परमात्मा में सत्यबुद्धि यह मुक्ति का कारण है।

✻ सच पूछो तो परमात्मा से या आनंद से, परम सुख से तुम रत्तीभर भी दूर नहीं हो।

सद्गुरु के शब्दमात्र से उद्धार होता है

– संत दादू दयालजी



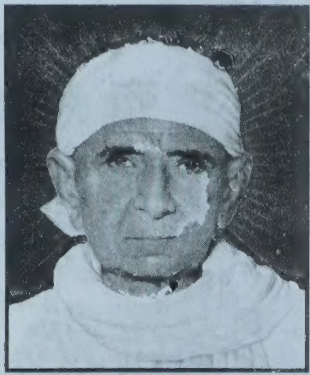
सद्गुरु के चरणों में सिर नवाकर अर्थात् उनकी शरण में रहने एवं भगवन्नाम का उच्चारण व जप करते रहने से प्राणी दुस्तर संसार से पार हो जाता है। वह अनायास ही अष्टसिद्धि, नवनिधि और अमर-अभय पद को प्राप्त कर लेता है। उसे भक्ति-मुक्ति सहज में ही प्राप्त होकर वह वैकुंठ को (यहाँ वैकुंठ अर्थात् अकुंठित मतिवाली अवस्था को) प्राप्त हो जाता है और अमरलोक की प्राप्ति (जीवन्मुक्ति) के फल को उपलब्ध हो जाता है।

उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - ये चारों मंगलमय पुरुषार्थ हस्तगत हो जाते हैं क्योंकि प्रभु के तो सभी वस्तुओं के भंडार भरे हैं फिर उनके भक्त को क्या नहीं मिलेगा ? जो तेजस्वरूप हैं, जिनकी स्वरूप-ज़्योति अपार है उन्हीं सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप में, सद्गुरु-चरणों में मस्तक रखकर तथा भगवन्नाम-चिंतन करके ही हम अनुरक्त हुए हैं।

जो सद्गुरु-शब्दों में मन लगाकर रहा है उसका हृदय सद्गुरु-शब्दों से वेधा गया है और जो उन शब्दों के द्वारा एक परमात्मा के भजन में लगता है वही जन अहंकारादि वक्रता को त्याग के सरल-स्वभाव बनता है। उसके हृदय पर शब्द की ऐसी मार्मिक चोट लगती है कि वह अपने तन-मन आदि सभीको भूल जाता है और अपने आत्मा के मूल परब्रह्म को अभेदरूप से जान के जीवन्मुक्त हो के जीते-जी मृतकवत् (अर्थात् → संसार के राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि से उदासीन) होकर रहता है। वह अति मधुर चेतनरूप महा-रस को चित्त से कभी नहीं भूलता। इस प्रकार जिसने निरंजनस्वरूप के बोधक सद्गुरु-शब्दों को ग्रहण किया है उसने परब्रह्म का साक्षात्कार किया है। सद्गुरु के एक शब्द से जिज्ञासु-जन का उद्धार हो जाता है। जिन्होंने एकाग्र मन से सद्गुरु-शब्द सुने हैं वे अनायास ही अज्ञान-निद्रा से जगे हैं। जब भी जो श्रद्धासहित गुरु के सम्मुख बैठ के सुनते हैं तब कान के द्वारा गुरुशब्द-बाण जाकर हृदय में लगता है और वे निरंतर अपनी वृत्ति को भीतर एक परब्रह्म में ही अनुरक्त करके रहते हैं। जो सद्गुरु-शब्दों में लगकर परमात्मा के सम्मुख रहते हैं वे संसार-दशा से आगे बढ़कर वर्तमान शरीर में ही देखते-देखते अविनाशी ब्रह्म में अभेदरूप से संलग्न हो के मुक्त हो गये हैं।

इच्छा बदलने से भगवत्प्राप्ति

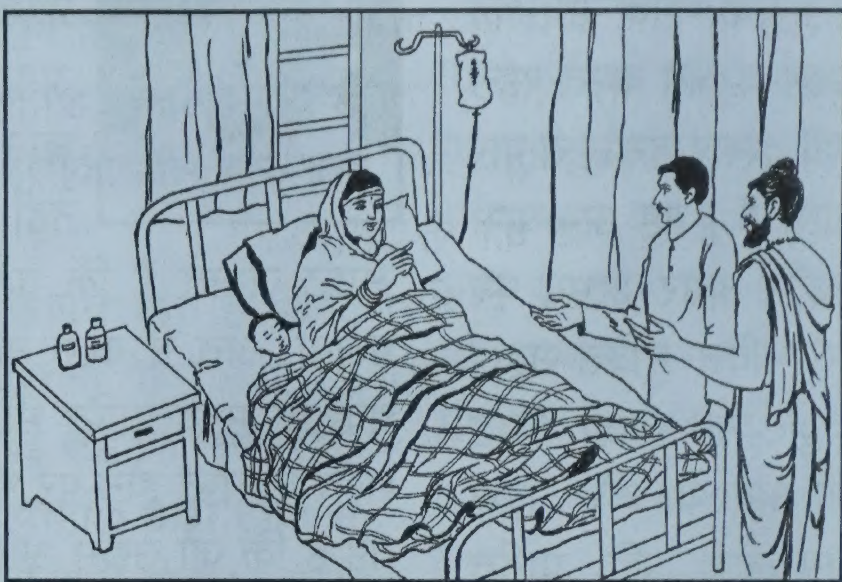
– साँईं श्री लीलाशाहजी महाराज



दुनिया के व्यवसायों, धन इकट्ठा करने, सम्मान प्राप्त करने आदि के लिए आप क्या-क्या नहीं करते ! जान की बाजी लगाने से भी नहीं चूकते। जबकि यह स्पष्ट जानते हैं कि यह सब हमारे साथ नहीं चलेगा, अंत में काम नहीं आयेगा। यदि आप चाहें तो भगवत्प्राप्ति भी कर सकते हैं, जो इस शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होगी। शर्त यह है कि जो उद्यम आप धन आदि पदार्थों को पाने में लगाते हैं वह भगवत्प्राप्ति हेतु लगायें। केवल इच्छा को बदलना पड़ेगा। ❑

सत्संग परम औषध है - पूज्य बापूजी

परमात्मा को अपना परम हितैषी मानें, परम मित्र जानें । इस जगत में परमात्मा जितना हितचिंतक दूसरा कोई नहीं है । जागतिक आसक्ति और कामनाएँ हमें अशांति की ओर ले जाती हैं, बहिर्मुख करके परतंत्रता का बोध कराती हैं । किंतु परमात्मा के प्रति जो प्रेम होता है वह हमें अशांति, चिंता और भय से मुक्त करके शांति के पावन मार्ग की ओर ले जाता है। वह हमें अंतर्मुख करके संतोष, आनंद और स्वातंत्र्य का अनुभव कराता है ।



परमात्म-प्रेम चैतन्योन्मुख बनाता है और विकार जड़ोन्मुख बनाते हैं । विकारी सुख का उपभोग करने के लिए जड़ शरीर की और जड़ इन्द्रियों की मदद लेनी पड़ती है जो हमें देहाध्यास में जकड़ देती है, जबकि ईश्वरीय प्रेम जड़ आसक्तियों को छोड़ने का साहस प्रदान करता है और अपने चैतन्यस्वरूप के आनंद-प्रसाद में विश्रांति दिलाकर अंतर्यामी ईश्वर के साथ हमारा मिलन करा देता है ।

एक सत्संगी महिला कार में मथुरा से वृंदावन की ओर जा रही थी। कार में उसके दो छोटे पुत्रों के अलावा पड़ोसी का वह छोटा शिशु भी था जिसकी माँ का निधन हो चुका था। कार पूरी गति से जा रही थी। इतने में सामने से तेज रफ्तार से आता हुआ टैंकर कार से बुरी तरह टकराया और भयंकर दुर्घटना घट गयी । कार-चालक और महिला के दोनों पुत्रों की मृत्यु हो गयी । महिला को भी काफी चोट पहुँची। तीन जगह फ्रैक्चर हो गया। किंतु माँ बिना के उस छोटे शिशु को कुछ न हुआ जिसे महिला ने गोद ले लिया था ।

जिन संत के सत्संग में वह महिला जाती थी, उनको जब इस बात का पता चला तो उन्होंने एक मुख्य साधु तथा आश्रमवासी साधक को उस महिला का समाचार जानने के लिए भेजा । उस महिला के पास जाकर साधु ने कहा : ''बहन ! आप तो सत्संगी हैं, फिर आपको इतना दुःख क्यों उठाना पड़ा ? कितनी भीषण दुर्घटना घटी ! आपके दोनों पुत्रों का वहीं निधन हो गया। आपको भी काफी चोट पहुँची है। आपके घर का पवित्र भोजन करनेवाला ड्राइवर भी बेमौत मारा गया। किंतु आश्चर्य है कि गोद लिये मासूम शिशु को कुछ न हुआ ! उसने तो कोई सत्संग नहीं सुना था। ऐसा क्यों हुआ ?''

उस साधु को जो जवाब मिला वह सबके लिए जानने योग्य है। उस सत्संगी महिला ने मंद मुस्कान के साथ कहा : ''स्वामीजी ! **ऐसा नहीं है कि सत्संग सुनने से जीवन में किसी प्रकार का सुख-दुःख का कोई प्रसंग ही न आये । फिर भी सत्संग में ऐसी एक अनुपम शक्ति है कि प्रारब्धवेग से जो भी सुख-दुःख के प्रसंग आते हैं उनमें सत्यबुद्धि नहीं रहती ।** इतनी भीषण दुर्घटना और इतनी भयंकर पीड़ा होते हुए भी मुझे तो ऐसा ही अनुभव होता है कि चोट इस नश्वर शरीर को पहुँची है, कष्ट शरीर भुगत रहा

है और नष्ट तो पुत्रों का पंचभौतिक शरीर हुआ है। मेरे शरीर में तीन जगह फ्रैक्चर हुआ है किंतु मेरे चैतन्यस्वरूप में कोई फर्क नहीं पड़ा। महाराज! इस आत्मबल से मैं ऐसे क्षणों में भी शांत और आनंदित हूँ।

सत्संग ऐसा परम औषध है जो बड़े-से-बड़े दुःखद प्रारब्ध को भी हँसते-हँसते सहन करने की शक्ति देता है और अच्छे-से-अच्छे अनुकूल प्रारब्ध को भी अनासक्त भाव से भोगने का सामर्थ्य देता है।

सत्संग ऐसा परम औषध है जो बड़े-से-बड़े दुःखद प्रारब्ध को भी हँसते-हँसते सहन करने की शक्ति देता है और अच्छे-से-अच्छे अनुकूल प्रारब्ध को भी अनासक्त भाव से भोगने का सामर्थ्य देता है।

स्वामीजी ! आकाश में उड़ना या पानी पर चलना कोई बड़ी सिद्धि नहीं है। यह तो क्रियायोग के थोड़े-से अभ्यास से सहज में ही मिलनेवाली सिद्धियों का अंशमात्र है। **बड़े-से-बड़े दुःख में भी सम और स्वस्थ ('स्व' में अर्थात् आत्मस्वरूप में स्थित) रहने के सामर्थ्य को ही संतजन सच्ची सिद्धि मानते हैं। मिथ्या देह से अहंता-ममता मिटाकर आत्मा-परमात्मा में प्रतिष्ठित होना ही वास्तव में परम सिद्धि है।''**

महिला के जवाब को सुनकर साधु और साधक प्रसन्नचित्त से विदा हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि महिला ने वास्तव में संतों के ज्ञान-प्रसाद को बड़े आदर के साथ आत्मसात् किया है।

उन्हींका जीवन धन्य है जो ब्रह्मवेत्ता संतों का सत्संग सुनते हैं, उसे समझ पाते हैं और जीवन में उतार पाते हैं। जिनके जीवन में सत्संग नहीं है वे छोटी-छोटी बात में परेशान हो जाते हैं, घबरा जाते हैं किंतु जिनके जीवन में सत्संग है वे बड़ी-से-बड़ी विपदा में भी रास्ता निकाल लेते हैं और बलवान होते हैं; सम्पदा में फँसते नहीं, विपदा में दबते नहीं। ऐसे परिस्थिति-विजयी आत्मारामी हो जाते हैं। ❐

तुम यह उत्तम सेवा कर सकते हो ! - पूज्य बापूजी

जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं उनके श्राद्ध के दिनों में तथा स्मरण के समय उन्हें सुझाव दो कि 'जन्म-मृत्यु तुम्हारा धर्म नहीं था। पाप-पुण्य तुम्हारा कर्म नहीं था। तुम अज, अविनाशी, निर्लेप नारायण के अविभाज्य स्वरूप हो। अतः अपने परमेश्वर-स्वभाव को सँभालो... स्मरण करो।'

अपने पति, पत्नी, पुत्र, पिता, जो भी मृतक संबंधी हो, उनका नाम लेकर कहो कि 'तुम वही हो... सचमुच वही हो जो मरने के बाद भी नहीं मरता। ॐ... ॐ... ॐ... ! तुम चैतन्य आत्मा हो। ॐ... ॐ... ॐ... ! शाश्वत परमेश्वर हो। ॐ... ॐ... ॐ... ! अविनाशी परमात्मा हो। ॐ... ॐ... ॐ... !'

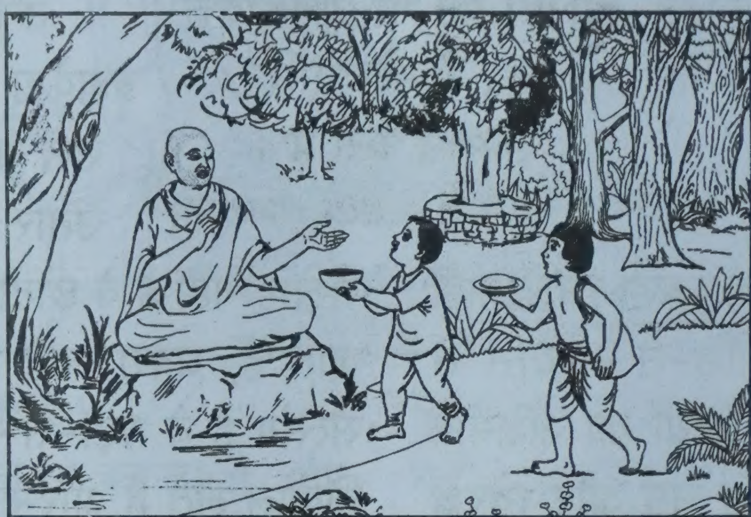
पृथ्वी पर के स्वप्नतुल्य संबंधों का स्मरण करके तुम नीचे न गिरो अपितु आत्मा-परमात्मा के संबंध को याद करते हुए अपना ऐहिक जीवन मंगलमय बनाओ। कोई चल बसनेवाले हों या चल बसे हों, उनको याद करके उनकी ओर ऐसे दिव्य विचार, अमर आत्मा का संदेश भेजो। इस प्रकार तुम उत्तम सेवा कर सकते हो और जीवितों को जीवनदाता में जगा सकते हो। ❐

उनका योगक्षेम सर्वेश्वर स्वयं वहन करते हैं

'चिंतन अनन्य हो तो भगवान के आने में देर नहीं' पिछले अंक से आगे

- पूज्य बापूजी

ईश्वर की लीला अचिंत्य है, उसका कोई छोर, कोई पारावार नहीं है । संत उड़िया बाबा, जिनको आनंदमयी माँ बड़े आदर से नमन करती थीं, वे एक बार आषाढ़ महीने में प्रभु की मस्ती में गंगा-तट पर चलते जा रहे थे... चलते जा रहे थे... । उन्हें जोरों की भूख लगी । दूर-दूर तक कोई गाँव दिखाई नहीं दिया । प्यास तो गंगाजल से मिट जाती किंतु भूख का क्या ? किसी पेड़ के नीचे बाबा आसन लगा के बैठ गये । रात्रि हो रही है... कोमल वाणी, मधुर चितवन, प्रेमभरी दृष्टि और आनंद देने की अनूठी रीतवाले दो सुकुमार खेलते हुए आये । बोले : ''बाबा-बाबा ! इधर बैठे हो, भोजन करोगे ?''



भूखे बाबा क्या 'न' बोलें ?

बोले : ''हाँ बेटा ! भूख तो लगी है ।''

''बाबा ! हम अभी लाते हैं खाना ।''

थोड़ी देर में बच्चे रोटी और केले की सब्जी लाये ।

बाबा की आदत थी, ब्राह्मण के हाथ का ही खाना ।

बालकों से पूछा : ''तुम किस जाति के हो ?''

उन दो प्यारे प्रसन्न बालकों ने कहा : ''बाबा ! हम माहेश्वरी बनिया हैं ।''

उन बच्चों का प्यार, सहजता और प्रभाव देखकर बाबा बोले : ''हाँ, लाओ-लाओ, खायेंगे ।''

बालकों ने भोजन दिया ।

बाबा ने पूछा : ''इधर कुछ दिखाई तो देत नहीं है, यह तुम कहाँ से ले आये ?''

बोले : ''हम उस गाँव से आये हैं । इध खेलने आये । तुम भूखे थे तो ले आये, खा लो ।''

बाबा ने रोटी खा ली । बड़ी तृप्ति हुई ।

भक्ति भगवान के लिए ही करें

बाबरिया भूत चला जायेगा यह कथा सुन से । 'मेरा करूँ, मैं करूँ, मे भविष्य के लिए करूँ...' यह सब करने का जो भूत है वह बाबरिया भूत है । फि बबूल के पेड़ पर चढ़ो औ उतरो, बस काँटे सहो ।

करना नहीं है, जानन है ! प्रभु को जानने में लगें नहीं तो बाबरिया भूत नहीं छोड़ेगा । 'अपना कुछ होना चाहिए, अपने नाम जमीन होनी चाहिए, अपना नाम होना चाहिए...' नाम तो हाड़-मांस के शरीर का रखा है, बोलते हैं : 'मैं करूँ ।'

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

शरीर को 'मैं' माना, नाम को सच्चा माना, 'यह मेरा, यह तेरा...' - यह माया आ गयी । जीवों की काया उसके वश हो गयी है । यह दिखनेवाला शरीर स्थूल काया है... स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर - तीनों कायाएँ उसके वश हो जाती हैं । मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर से भटकना पड़ता है । यह बाबरिया भूत भटकाता है ।

भगवान की भक्ति भी करते हैं लेकिन संसार की चीजें पाने के लिए करते हैं तो समझो अभी कई जन्म लेना बाकी है । भगवान की भक्ति

भगवान को पाने के लिए ही करते हैं तो समझो यह जन्म सार्थक हो रहा है ।

बिना बुलाये प्रभु पुनः आये

आत्मसुख से तृप्त रहनेवाले उड़िया बाबा ने थोड़ा ब्रह्मचिंतन कर आकाशरूप ईश्वरत्व की तरफ निहारते हुए विश्राम किया । प्रभात हुआ, दोनों बालक अँधेरे में ही फिर आ गये ।

बोले : ''बाबा ! कुछ पियोगे ?''

''ओ हो ! बेटा, इतनी जल्दी आ गये !''

''हाँ बाबा !''

बोले : ''हाँ, पियेंगे कुछ ।''

वे मिट्टी की हँड़िया में लस्सी ले आये । बाबा ने लस्सी पी ली ।

बाबा बोले : ''बेटे ! इतने अँधेरे में कैसे आये ?''

बोले : ''खेलते-खेलते हम आ गये । अच्छा बाबा ! आपने लस्सी पी ली, हम जाते हैं ।''

बाबा देखते रहे, बच्चे चले गये ।

बच्चों का रूप लेकर भगवान कैसे प्रकट हो जाते हैं ! एक तरफ तो वह सृष्टि का सर्जनहार है, पालक है, पोषक है, संहारक है और दूसरी तरफ बाबा का बेटा होने में उसे मजा आ रहा है ।

बाबा ने खड़े हो के देखा, फिर चलते गये... चलते रहे... कोई गाँव दिखा नहीं । 'बच्चे आये कहाँ से, गये कहाँ ?' बाद में बाबा को महसूस हुआ कि वे बालक के रूप में श्याम-बलराम थे ।

कैसा है भगवद्-ज्ञान, भगवद्-प्रसाद, भगवद्-माधुर्य ! बच्चों का रूप लेकर भगवान कैसे प्रकट हो जाते हैं ! एक तरफ तो वह सृष्टि का सर्जनहार है, पालक है, पोषक है, संहारक है और दूसरी तरफ बाबा का बेटा होने में उसे मजा आ रहा है ।

ऐसे एक संत मुझे गंगोत्री से ऊपर गोमुख के शांत सन्नाटे में मिले थे । बातचीत की और मैं मुड़ गया फिर विचार आया कि 'ये आये कहाँ से, गये कहाँ ?' चट्टानों पर चढ़ के दूर-दूर तक देखा, कहीं दिखे नहीं । गोमुख के शांत सन्नाटे में तो चिड़िया भी नहीं फटक सकती थी तो संत कहाँ छुपेंगे ! लेकिन ईश्वर की लीला अपरम्पार है ।

उड़िया बाबा मस्ती-मस्ती में गुनगुनाते चले :

जिन खान-पान नहीं भावै है,
नहिं कोमल वसन[1] सुहावै है ।
सब विषयभोग नित खारा है,
हरि-आशिक का मग न्यारा है ॥

'मग' माने मार्ग ।

तिन सबसे नाता तोड़ा है,
विष विषयों से मन मोड़ा है ।

विषय-विकार दिखते तो अमृत हैं किंतु ये जहर हैं । जितना भी संसार का मजा है, जीव को फँसानेवाला है, 'सजा' है और आत्मा का मजा जीवात्मा को परमात्ममय बनानेवाला है ।

इक अपना प्रिय उर धारा है...

अपने परमेश्वर को, अपने आनंदस्वरूप ईश्वर को हृदय में धारा (धारण किया) है ।

हरि-आशिक का मग न्यारा है ॥...
जग जो जो वस्तु देखे है,
सब सत्य न करके पेखे[2] हैं ।
तिन जगसों किया किनारा है,
हरि-आशिक का मग न्यारा है ॥

बाबा गुनगुनाते जा रहे हैं, मानो अपने अंतर्यामी को, अपने प्यारे को, प्रिय को सुनाये जा रहे हैं ।

जैसा तनु[3] चले चलाते हैं,
जब हरि देवे तब खाते हैं ।
तिनके संग फिरता प्यारा है,
हरि-आशिक का मग न्यारा है ॥

---

१. वस्त्र २. देखे ३. तन

जो प्रेम पियाला पीते हैं,
प्रिय सहित सभी जग जीते हैं ।...

प्रभु का प्रेम-प्याला जिन्होंने पिया है, उन्होंने हरिसहित जगत को जीता है ।

कुछ करना नहीं विचारा है,
हरि-आशिक का मग न्यारा है ॥

इस प्रकार बाबा गुनगुनाते जा रहे हैं ।

बाबा से पूछा : ''बाबा ! वहाँ भोजन कौन लाये थे ?''

बोले : ''उसकी लीला है ।

जैसा तनु चले चलाते हैं,
जब हरि देवे तब खाते हैं ।...''

कैसी सुंदर व्यवस्था है उस सुंदर की ! कोई खाने-पीने की चीज नहीं, कोई घरबार-मकान नहीं है, चलो बैठ गये उसके चिंतन में... 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।... ॐ आनंद ॐ... तू-ही-तू... ।' तो 'तू-ही-तू' को बालक होने में देर क्या लगे ! खिलाड़ी (भगवान) बच्चे हो के आये ।

...कोई साथ चला नहीं

भगवन्नाम-जप से वाणी शुद्ध होती है । भगवान के चिंतन, ध्यान से अंतःकरण शुद्ध होता है । नहीं तो बाबरिया भूत अंतःकरण में बैठ जाता है : 'मैं अपना कुछ करूँ... मैं यह प्लॉट लूँ और ऑफिस खोलूँ... मैं ये दोस्त बनाऊँ, पत्नी लाऊँ, पति लाऊँ... इसको रिझाऊँ, उसको रिझाऊँ, उनसे निभाऊँ...' निभा-निभा के मर गये, कोई साथ चला नहीं लेकिन जिन्होंने प्रभु से निभा लिया उनका तो साथ पाकर लोग पावन हो जाते हैं ।

(क्रमशः) ❐

आपका व्यक्तित्व परमानंद है

कर्म होते हैं, उनका उपादान★ क्या है - प्रकृति, तीन गुण, ईश्वर, अनेक वस्तुओं का मिश्रण अथवा और कुछ ? इस विषय में बहुत मतभेद हैं । काल, पूर्वकर्म, स्वभाव, आकस्मिकता - अनेक प्रकार के विचार हैं कर्मों के निमित्त और उपादान के संबंध में । मुख्य बात यह नहीं है कि कर्म हो रहे हैं या नहीं, यह भी मुख्य नहीं है कि वे सकाम हो रहे हैं या निष्काम - मुख्य बात यह है कि आप अपने को उनका कर्ता मानते हैं कि नहीं ? अनिर्वचनीय कारण से हुए कर्म का अपने को कर्ता बताना आकाश में चमकते हुए तारों को अपनी रचना बताने के समान है । अभिमान कर लीजिये, प्रारब्ध को दोष दे लीजिये, वासनाओं के नचाये नाच लीजिये, समाज की उठती-बहती, बदलती, छलकती, इठलाती, इतराती लहर में बह जाइये, ठीक है परंतु आप यथार्थ को पहचानते हैं कि नहीं ? अपने को कर्म का कर्ता मानना अज्ञान है । कर्म के फल का भोक्ता मानना भी अज्ञान है । वह भोक्ता चाहे इस लोक में बने चाहे परलोक में - कर्ता-भोक्ता भ्रम है । नरक-स्वर्ग अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार मिलते हैं । आत्मा की परिच्छिन्नता (सीमितता, अलगाव) भी दृश्य है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं हो सकती । दृश्य से द्रष्टा अनोखा, अनूठा, विलक्षण होता है । अपनी अद्वितीयता, पूर्णता के बोध से परिच्छिन्नता का भ्रम मिटता है । अतः अपने को जानिये । भ्रांति-मूलक कर्तापन, भोक्तापन, संसारीपन एवं परिच्छिन्नपन का बाध कर दीजिये । आपका व्यक्तित्व मस्त-मौला है, परमानंद है, जीवन्मुक्त है ! ❐

★ उपादान यानी वह सामग्री जिससे कोई वस्तु तैयार होती है, जैसे - घड़े का उपादान मिट्टी है ।

ऐसा होता है उत्तम श्रद्धालु

सात्त्विक, शुद्ध श्रद्धावाले व्यक्ति ही सर्वोत्तम श्रद्धालु हैं । उत्तम श्रद्धालु का पथ-प्रदर्शन सद्गुरुदेव ही करते हैं और ये श्रद्धालु भी सर्वभावेन (सब प्रकार से) सद्गुरुदेव के ही आश्रित होकर रहते हैं इसीलिए श्रद्धालु सदा निर्भय, निश्चिंत होते हैं ।

श्रद्धालु के हृदय में सद्गुरुदेव के अतिरिक्त और किसीको स्थान नहीं मिलता । वह सरलता एवं सद्भाव पूर्वक अपना पूरा जीवन सद्गुरु के हाथों में देकर अपना सब कुछ सुरक्षित और सार्थक समझता है ।



श्रद्धा संजीवनी

गुरुदेव की वाणी सुनने के लिए श्रद्धालु की सभी इन्द्रियाँ मौन (चंचलतारहित) रहती हैं, मन भी शांत रहता है और बुद्धि सावधानी से गुरुप्रदत्त ज्ञान को ग्रहण करती है । श्रद्धालु अपने हानि-लाभ, पतन-उत्थान की चिंता नहीं करता । जो कुछ आता है उनकी इच्छा समझकर स्वीकार करता है, जो कुछ जाता है उसे भी उनकी इच्छा समझ के जाने देता है और जो कुछ नहीं भी मिलता उसे भी उन्हींकी रुचि में छोड़ते हुए संतुष्ट रहता है ।

श्रद्धालु निरंतर अपने श्रद्धास्पद की अदृश्य शक्ति को अपने साथ अनुभव करता है और अपनी रक्षा के विषय में निश्चिंत रहता है । श्रद्धालु का शरीर कहीं भी रहे परंतु वह हृदय से अपने आराध्य को दृढ़ता से पकड़े रहता है । उसकी बुद्धि में उन्हींका ज्ञान रहता है, मन में उन्हींके सद्भाव रहते हैं, तदनुसार प्रत्येक क्रिया सद्भावानुरक्षित होने के कारण सुंदर फल देती है परंतु श्रद्धालु प्रत्येक प्राप्त फल को श्रद्धास्पद की सेवा में निवेदित करते हुए ही संतुष्ट रहता है ।

श्रद्धालु अपने प्रभु के प्रेम से इस प्रकार धनी होता है कि और कुछ चाहता ही नहीं, उसमें अभाव का ही अभाव हो जाता है । वह अटूट धैर्य एवं सुंदर भाव की गम्भीरता में दृढ़ रहकर श्रद्धास्पद के दर्शाये हुए सत्य लक्ष्य (परमात्मप्राप्ति) की ओर बढ़ता जाता है । श्रद्धालु पग-पग पर अपने प्रभु की दया का अनुभव करता है, वह दया की याचना नहीं करता । वह जिधर देखता है, उनकी दया से ही अपने को सुरक्षित पाता है । जिस प्रकार भीतर से संसार से पूर्ण विरक्त और सत्य से पूर्ण अनुरक्त संत-सत्पुरुष कहीं-कहीं दिखाई देते हैं, उसी प्रकार संसार में उत्तम श्रद्धावाले प्रेमी, जिज्ञासु भी कहीं-कहीं मिलते हैं ।

जिसका अंतःकरण सरल एवं शुद्ध है उसीमें सात्त्विक श्रद्धा प्रकाशित होती है । संत-सद्गुरु की समीपता में रहकर जो उनकी आज्ञानुसार सदाचरणरूपी सेवा करता है, उसीकी श्रद्धा सात्त्विक होती है । जो स्वच्छंद, स्वेच्छाचारी नहीं होता, जो अपने श्रद्धेय प्रभु की सेवा में अपनी रुचि-विरुचि कुछ भी नहीं सोचता, उसीकी सर्वोत्तम श्रद्धा होती है ।

अपनी सेवाओं का मूल्य नहीं चाहना, फल की आशा नहीं रखना - यही उत्तम श्रद्धालु में त्याग होता है । अपने प्रभु के संकेतानुसार चलने में कहीं भी आलस्य न करना और कर्तव्यपालन में प्रमादी न होना, सदा प्रसन्न रहकर सेवा-धर्म में तत्पर रहना - यही उत्तम श्रद्धालु का तप है । इस प्रकार के त्याग और तप से उत्तम श्रद्धालु पवित्रता एवं शक्ति से सम्पन्न होता है ।

जो उत्तम श्रद्धालु अपनी बुद्धिमत्ता का गर्व

नहीं करते और सदा अपने प्रभु के सम्मुख अपनी बुद्धि को निष्पक्ष रख सकते हैं, जो विनम्र और दयालु हो के, क्षमावान और सहनशील हो के सभी प्राणियों पर हितदृष्टि रखते हुए शुद्ध व्यवहार करते हैं, वे ही यथार्थ ज्ञानी होते हैं। उत्तम श्रद्धालु जगत की वस्तुओं के वास्तविक रूप को जान लेते हैं अतएव वे मोही नहीं होते। वे स्वार्थलोलुप भी नहीं होते इसीलिए रागी अथवा द्वेषी नहीं होते वरन् पूर्ण प्रेमी होते हैं और इसी कारण उत्तम श्रद्धालु पूर्ण तृप्त होते हैं।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

'श्रद्धावान, आत्मज्ञानप्राप्ति के साधनों में लगा हुआ और जितेन्द्रिय पुरुष आत्मज्ञान को प्राप्त करता है तथा आत्मज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त हो जाता है।'

(गीता : ४.३९) ❑

आप जितना चाहें उतने महान हो सकते हो

- पूज्य बापूजी

आपके अंदर ईश्वर की असीम शक्ति पड़ी है। वटवृक्ष का बीज छोटा दिखता है, हवा का झोंका भी उसको इधर-से-उधर उड़ा देता है किंतु उसी बीज को अवसर मिल जाय तो वह वृक्ष बन जाता है और सैकड़ों पथिकों को आराम कराने की उसकी योग्यता प्रकट हो जाती है, सैकड़ों पक्षियों को घोंसला बनाने का अवसर भी वह दे देता है। ऐसे ही जीवात्मा में बीजरूप से ईश्वर की सब शक्तियाँ छुपी हैं, यदि उसको सहयोग (ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सत्संग-सान्निध्य आदि) मिले तो जितना ऊँचा उठना चाहे, जितना महान होना चाहे उतना वह हो सकता है।

परिस्थितियों के असर से रहें बेअसर

- पूज्य बापूजी

अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ आयें तो तुम उनमें फँसो मत, नहीं तो वे तुम्हें ले डूबेंगी। जो दुनिया की 'तू-तू, मैं-मैं' से प्रभावित नहीं होता, जो दुनियादारों की निंदा-स्तुति से और दुनिया के सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होता, वह दुनिया को हिलाने में और जगाने में अवश्य सफल हो जाता है।

सुविधा-असुविधा यह इन्द्रियों का धोखा है, सुख-दुःख यह मन की वृत्तियों का धोखा है और मान-अपमान यह बुद्धिवृत्ति का धोखा है। इन तीनों से बच जाओ तो संसार आपके लिए नंदनवन हो जायेगा, वैकुंठ हो जायेगा। **वास्तव में तुम वृत्तियों, परिस्थितियों से असंग हो, द्रष्टा, चेतन, नित्य, ज्ञानस्वरूप, निर्लेप नारायण हो। कहीं जाना नहीं है, कुछ पाना नहीं है, कुछ छोड़ना नहीं है, मरने के बाद नहीं वरन् आप जहाँ हो वहीं-के-वहीं और उसी समय चैतन्य, सुखस्वरूप, ज्ञानस्वरूप में सजग रहना है बस ! ॐकार व गुरुमंत्र का जप, सजगता व सत्कर्म और आत्मवेत्ता पुरुष की कृपा एवं सान्निध्य से परम पद में जगना आसान है।**

लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल एक बार रेल के दूसरे दर्जे में यात्रा कर रहे थे। डिब्बे में भीड़भाड नहीं थी वरन् वे अकेले थे। इतने में स्टेशन पर गाड़ी रुकी और एक अंग्रेज माई आयी। उसने देखा कि 'इनके पास तो खूब सामान-वामान है।' वह बोली : ''यह सामान देकर तुम चले जाओ, नहीं तो मैं शोर मचाऊँगी। राज्य हमारा है और तुम 'इंडियन' हो। मैं तुम्हारी बुरी तरह पिटाई करवाऊँगी।''

जो व्यक्ति परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता वह परिस्थितियों को प्रभावित कर देता है। सरदार पटेल को युक्ति लड़ाने में देर नहीं लगी। उन्होंने माई की बात सुनी तो सही किंतु ऐसा स्वाँग किया कि मानो वे गूँगे-बहरे हैं। वे इशारे से बोले : ''तुम क्या बोलती हो वह मैं नहीं सुन पा रहा हूँ। तुम जो बोलना चाहती हो वह लिखकर दे दो।''

उस अंग्रेज माई ने समझा कि 'यह बहरा है, सुनता नहीं है।' अतः उसने लिखकर दे दिया। जब चिट्ठी सरदार के हाथ में आ गयी तो वे खूब जोर से हँसने लगे। अब माई बेचारी क्या करे ? उसने तो धमकी देना चाहा था किंतु अपने हस्ताक्षरवाली (हस्तलिखित) चिट्ठी देकर खुद ही फँस गयी।



ऐसे ही प्रकृति माई से हस्ताक्षर करवा लो तो फिर वह क्या शोर मचायेगी ? क्या पिटाई करवायेगी और क्या तुम्हें जन्म-मरण के चक्कर में डालेगी ? इस प्रकृति माई की ये ही तीन बातें हैं : शीत-उष्ण, सुख-दुःख और मान-अपमान। इनसे अपने को अप्रभावित रखो तो विजय तुम्हारी है। किंतु गलती यह करते हैं कि साधन भी करते हैं और असाधन भी साथ में रखते हैं। सच्चे भी बनना चाहते हैं और झूठ भी साथ में रखते हैं। भले बने बिना भलाई खूब करते हैं और बुराई भी नहीं छोड़ते हैं। विद्वान भी होना चाहते हैं और बेवकूफी भी साथ में रखते हैं। भय भी साथ में रखते हैं और निर्भय भी होना चाहते हैं। आसक्ति साथ में रखकर अनासक्त होना चाहते हैं इसीलिए परमात्मा का पथ कठिन हो जाता है। कठिन नहीं है; परमात्मा दूर नहीं, दुर्लभ नहीं, परे नहीं, पराया नहीं है।

अतः अपने स्वभाव में जागो। 'स्व'भाव अर्थात् 'स्व' का भाव, 'पर'भाव नहीं। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि 'पर'भाव हैं क्योंकि ये शरीर, मन और बुद्धि के हैं, हमारे नहीं। सर्दी आयी तब भी हम थे, गर्मी आयी तब भी हम हैं। सुख आया तब भी हम थे और दुःख आया तब भी हम हैं। अपमान आया तब भी हम थे और मान आया तब भी हम हैं। हम पहले भी थे, अब भी हैं और बाद में भी रहेंगे। अतः सदा रहनेवाले अपने इसी 'स्व'भाव में जागो।

शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता, मन के सुखाकार और दुःखाकार भाव, बुद्धि के रागाकार और द्वेषाकार भाव - इनको आप सत्य मत मानिये। ये तो आने-जानेवाले हैं, बनने-मिटनेवाले हैं, बदलनेवाले हैं लेकिन अपने 'स्व'भाव को जान लीजिये तो काम बन जायेगा। जितना-जितना व्यक्ति जाने-अनजाने 'स्व' के भाव में होता है उतना-उतना वह परिस्थितियों के प्रभाव से अप्रभावित रहता है और जितना वह अप्रभावित रहता है उतना ही आत्मस्वभाव में विश्रांति पाकर पुनीत होता है। ❐

अमृतबिंदु - पूज्य बापूजी

जब विघ्न-बाधाएँ आयें तो अपने को दीन-हीन और निराश नहीं मानना चाहिए बल्कि समझना चाहिए कि वे अंतर्यामी परमात्मा हमारे हृदय में प्रकट होना चाहते हैं, हमारी छुपी हुई जीवन की शक्तियाँ खोलकर वे जीवनदाता हमसे मिलना चाहते हैं।

आत्मबल कैसे जगायें ?

- पूज्य बापूजी

हररोज प्रातःकाल जल्दी उठकर सूर्योदय से पूर्व स्नानादि से निवृत्त हो जाओ । स्वच्छ, पवित्र स्थान में आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख हो के पद्मासन★ या सुखासन में बैठ जाओ । शांत और प्रसन्न वृत्ति धारण करो ।



मन में दृढ़ भावना करो कि 'मैं प्रकृति-निर्मित इस शरीर के सब अभावों को पार करके (उन अभावों से संबंध-विच्छेद करके), सब मलिनताओं-दुर्बलताओं से पिंड छुड़ाकर आत्मा की महिमा में जाग के ही रहूँगा ।'

आँखें आधी खुली-आधी बंद रखो । अब फेफड़ों में खूब श्वास भरो और भावना करो कि 'श्वास के साथ मैं सूर्य का दिव्य ओज भीतर भर रहा हूँ ।' श्वास को यथाशक्ति अंदर टिकाये रखो । फिर 'ॐ' का लम्बा उच्चारण करते हुए श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते जाओ । श्वास के खाली होने के बाद तुरंत श्वास न लो । यथाशक्ति बिना श्वास रहो और भीतर-ही-भीतर 'हरि ॐ... हरि ॐ...' का मानसिक जप करो । फिर से फेफड़ों में खूब श्वास भरो । पूर्वोक्त रीति से श्वास यथाशक्ति अंदर रोककर बाद में धीरे-धीरे छोड़ते हुए 'ॐ...' का गुंजन करो ।

१०-१५ मिनट ऐसे प्राणायाम सहित उच्च स्वर से 'ॐ...' की ध्वनि करके शांत हो जाओ । सब प्रयास छोड़ दो । वृत्तियों को आकाश की ओर फैलने दो । आकाश के अंदर पृथ्वी है । पृथ्वी पर अनेक देश, अनेक समुद्र एवं अनेक लोग हैं । उनमें से एक आपका शरीर आसन पर बैठा हुआ है । इस पूरे दृश्य को आप मानसिक आँख से भावना से देखते रहो । **आप शरीर नहीं हो बल्कि अनेक शरीर, देश, सागर, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र सूर्य, चन्द्र एवं पूरे ब्रह्मांड के द्रष्टा हो, साक्षी हो । इस साक्षीभाव में जाग जाओ ।**

थोड़ी देर के बाद फिर से प्राणायामसहित 'ॐ' का लम्बा उच्चारण करो और शांत हो के अपने विचारों को देखते रहो ।

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है । अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं । तमाम वृत्तियों को एकत्र करके साधनाकाल में आत्मचिंतन में लगाओ और व्यवहारकाल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ ।

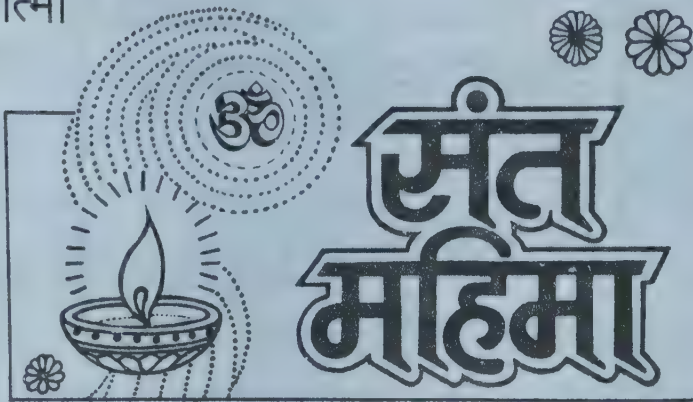
विचारशील एवं प्रसन्न रहो । स्वयं अचल रहकर सागर की तरह सब वृत्तियों की तरंगों को अपने भीतर समा लो । जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो । सबसे स्नेह रखो । हृदय को व्यापक रखो । संकुचितता का निवारण करते रहो । खंडनात्मक वृत्ति (परमात्मा की सृष्टि में दोष देखने की वृत्ति) का सर्वथा त्याग करो ।

आत्मनिष्ठा में जागे हुए महापुरुषों के सत्संग और सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदांत से पुष्ट व पुलकित करो । कुछ ही दिनों के इस सघन प्रयोग के बाद अनुभव होने लगेगा कि 'भूतकाल के नकारात्मक स्वभाव, संशयात्मक-हानिकारक कल्पनाओं ने जीवन को कुचल डाला था, विषैला कर दिया था । अब निश्चयबल के चमत्कार का पता चला । अंतरतम में आविर्भूत दिव्य खजाना अब मिला । प्रारब्ध की बेड़ियाँ अब टूटने लगीं ।'

★ विधि हेतु पढ़ें आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'योगासन' ।

''शहर को महामारियों से बचाना असम्भव था लेकिन...''

लोभी धन का चिंतन करता है, मोही परिवार का, कामी कामिनी का, भक्त भगवान का चिंतन करता है किंतु ज्ञानवान महापुरुष ऐसे परम पद को पाये हुए होते हैं कि वे परमात्मा का भी चिंतन नहीं करते क्योंकि परमात्मस्वरूप के ज्ञान से वे परमात्ममय हो जाते हैं । उनके लिए परमात्मा निजस्वरूप से भिन्न नहीं होता। हाँ, वे यदि चिंतन करते हैं तो इस बात का कि **सबका मंगल, सबका भला** कैसे हो ।



वर्ष २००६ में सूरत में भीषण बाढ़ आयी थी, जिससे वहाँ कई गम्भीर बीमारियाँ फैल रही थीं । तब करुणासागर पूज्य बापूजी ने गूगल, देशी घी आदि हवनीय औषधियों के पैकेट बनवाये तथा अपने साधक-भक्तों को घर-घर जाकर धूप करने को कहा । साथ ही रोगाणुओं से रक्षा का मंत्र व भगवन्नाम-उच्चारण की विधि बतायी । विशाल साधक-समुदाय ने वैसा ही किया, जिससे सूरत में महामारियाँ व्यापक रूप नहीं ले पायीं ।

वहाँ कार्यरत प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) के चिकित्सकों ने जब यह देखा तो कहा कि ''शहर को महामारियों से बचाना असम्भव था लेकिन संत आशारामजी बापू ने यह छोटा-सा परंतु बहुत ही कारगर उपाय दिया, जिससे शहरवासियों की भयंकर महामारियों से सहज में ही सुरक्षा हो गयी ।''

पूज्य बापूजी अपने सत्संगों में वायुशुद्धि हेतु सुंदर युक्ति बताते हैं : ''आप अपने घरों में देशी गाय के गोबर के कंडे पर अगर एक चम्मच मतलब ८-१० मि.ली. घी की बूँदें डालकर धूप करते हैं तो एक टन शक्तिशाली वायु बनती है । इससे मनुष्य तो क्या, कीट-पतंग और पशु-पक्षियों को भी फायदा होता है । ऐसा शक्तिशाली भोजन दुनिया की किसी चीज से नहीं बनता । वायु जितनी बलवान होगी, उतना बुद्धि, मन, स्वास्थ्य बलवान होंगे ।'' (गौ-गोबर व विभिन्न जड़ी-बूटियों से बनी 'गौ-चंदन' धूपबत्ती आश्रमों में व समितियों के सेवाकेन्द्रों पर उपलब्ध है । उसे जलाकर उस पर देशी गाय के घी अथवा घानीवाले खाद्य तेल या नारियल तेल की बूँदें डाल के भी ऊर्जावान प्राणवायु बनायी जा सकती है ।)



पूज्य बापूजी की ऐसी अनेकानेक युक्तियों से लाभ उठाकर जनसमाज गम्भीर बीमारियों से बच के स्वास्थ्य-लाभ पा रहा है ।

अरबों रुपये लगा के भी जो समाजहित के कार्य नहीं किये जा सकते, वे कार्य ज्ञानवान संतों की प्रेरणा से सहज में ही हो जाते हैं । संतों-महापुरुषों की प्रत्येक चेष्टा लोक-मांगल्य के लिए होती है । धन्य हैं समाज के वे सुज्ञ जन, जो ऐसे महापुरुष की लोकहितकारी सरल युक्तियों का, जीवनोद्धारक सत्संग का लाभ लेते व औरों को दिलाते हैं ! ❐

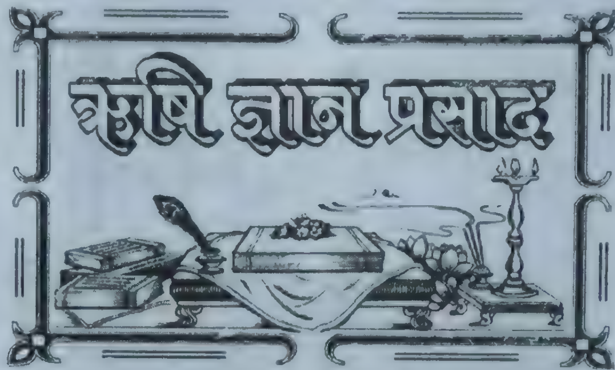
→ जिनको ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का सत्संग और आत्मविद्या का लाभ मिल जाता है, उनके जीवन से दुःख विदा होने लगते हैं । ॐ आनंद ! ठीक है न ? करोगे न हिम्मत ? शाबाश वीर... ! शाबाश... !!

(आश्रम से प्रकाशित सत्साहित्य 'जीवन रसायन' से)

इस सेवा का लाभ अवश्य लें



दिसम्बर २०१९ की बात है। एक दिन हम ५-६ साधक जेऊर गाँव (जि. सोलापुर, महाराष्ट्र) में ऋषि प्रसाद के सदस्य बना रहे थे। हम एक हार्डवेयर की दुकान पर पहुँचे तो हमारे 'हरि ॐ' बोलते ही दुकानदार ने कहा : ''क्या आप सब बापू के साधक हैं ?''



हमने खुशी से हामी भरी तो वे बोले : ''बापू तो अभी जेल में हैं, मुझे यह पत्रिका नहीं चाहिए। मुझे पहले बापू पर पूरा विश्वास था किंतु मीडिया में जो दिखाया गया उससे मैं डिस्टर्ब्ड हूँ। मैं आपसे कुछ सवाल पूछना चाहता हूँ।''

हमने उनकी शंकाओं का निवारण किया और उनको ऋषि प्रसाद का सुप्रचार अंक व आश्रम का सत्साहित्य आदि दिखाकर सच्चाई से अवगत कराया।

हमारी बातें सुनकर वे बड़े विस्मित हो के गद्गद कंठ से बोले : ''मैं भी बापू का साधक हूँ। ७-८ साल पहले की बात है। मुझे पंढरपुर (महाराष्ट्र) में बापू के बहुत नजदीक से दर्शन हुए थे। मैं मुसलमान हूँ फिर भी बापू ने मुझे अपने साथ गाड़ी में बिठाया और मुझे अच्छी-अच्छी बातें भी बतायीं कि ''गलत काम मत करो, किसीका बुरा मत सोचो, बुरा मत करो।'' मुझे प्रसाद भी दिया।

मैं उसी दिन बापू का हो गया था लेकिन बीच में मीडिया की कारसाजी के कारण मेरी सोच गलत हो गयी थी। अब बापू के प्रति मेरी निष्ठा मजबूत हो गयी है। अब मैं भी ऋषि प्रसाद की सेवा करूँगा।''

यह सुनकर हम बहुत आनंदित हुए कि 'ऋषि प्रसाद की सेवा के माध्यम से हमें एक भटके गुरुभाई की श्रद्धा की टूटती डोर जोड़ने का सौभाग्य मिला।' वे भाई हमारे साथ ऋषि प्रसाद के अभियान में आने लगे।

ऋषि प्रसाद की सेवा समाज के भूले-भटके लोगों तक गुरुदेव का प्रसाद पहुँचाने का बहुत सुंदर माध्यम है इसलिए सभी साधकों से मेरा निवेदन है कि वे इस सेवा का अवश्य लाभ लें। **– जोतीराम काले**

सचल दूरभाष : ९५७९४२७६४७

अमृतबिंदु – पूज्य बापूजी

भोग भोगने की अपेक्षा एकांत में ध्यान-भजन ज्यादा अच्छा है और एकांत के तप से भी आत्मज्ञान के सत्संग से ज्यादा लाभ होता है।

सब ठौर मैं ही दीखता हूँ

मैं हूँ निरंजन शांत निर्मल बोध माया से परे।
हूँ काल का भी काल मैं,
मन-बुद्धि-काया से परे॥
मैं तत्त्व अपना भूलकर, व्यामोह में था पड़ गया।
श्रुति संत गुरु ईश्वर कृपा,
सब मुक्त बंधन से भया॥
जैसे प्रकाशूँ देह मैं, त्यों ही प्रकाशूँ विश्व सब।
हूँ इसलिए मैं विश्व सब,
अथवा नहीं हूँ विश्व अब॥
सशरीर सारे विश्व का है, त्याग मैंने कर दिया।
सब ठौर मैं ही दीखता हूँ,
ब्रह्म केवल नित नया॥

(आश्रम से प्रकाशित 'श्री ब्रह्मरामायण' से)

सेवा को, सच्चाई को - सबको निगल लेता है राग-द्वेष। इसको स्वाहा करो।

सेवा पराधीनता नहीं, स्वातंत्र्य का एक विलक्षण प्रकाश है

जब तक सेवा के लिए किसी उद्दीपन (प्रोत्साहन) की अपेक्षा रहती है तब तक सेवा नैमित्तिक है, नैसर्गिक नहीं। वह दूर रहकर भी हो सकती है और जो भी सम्मुख हो उसकी भी हो सकती है। जैसे सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा का आह्लाद उनकी सहज स्फूर्ति है वैसे ही **सेवा आत्मा का सहज उल्लास है।** आलम्बन (साधन, आश्रय) चाहे कोई भी हो, उसमें परम तत्त्व का ही दर्शन होता है। **आलम्बन बनाने में अपने पूर्व संस्कार या पूर्वग्रह काम करते हैं परंतु सब आलम्बनों में एक तत्त्व का दर्शन करने से शुभ ग्रह एवं अशुभ ग्रह दोनों से प्राप्त इष्ट-अनिष्ट की निवृत्ति हो जाती है** और सब नाम-रूपों में अपने इष्ट का ही दर्शन होने लगता है। अभिप्राय यह है कि सेवा न केवल चित्तशुद्धि का साधन है, प्रत्युत शुद्ध वस्तु का अनुभव भी है। अतः सेवा कोई पराधीनता नहीं है, यह स्वातंत्र्य का एक विलक्षण प्रकाश है, दिव्य ज्योति है।

आप जो कुछ होना चाहते हैं, अभी हो जाइये

आप जो पाना चाहते हैं या जैसा जीवन बनाना चाहते हैं उसे आज ही पा लेने में या वैसा बना लेने में क्या आपत्ति है ? अपने जिस भावी जीवन का मनोराज्य करते हैं वैसा अभी बन जाइये। उस जीवन को प्राप्त करने के लिए अभ्यास की पराधीनता क्यों अंगीकार करते हैं ? **आप जैसा जो कुछ होना चाहते हैं, अभी हो जाइये।** अपने जीवन को भविष्य के गर्भ में फेंक देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं।

क्या आप सेवापरायण होना चाहते हैं ? तो हो जाइये न ! आपका जीवन क्या अपने से दूर है ? क्या उसके प्राप्त हो जाने में कोई देर है ? फिर दुविधा क्यों है ? सच्ची बात यह है कि आपके जीवन में कोई ऐसी वस्तु घुस आयी है, आपके अंतर्देश में किसी वस्तु या व्यक्ति की आसक्ति ने ऐसा प्रवेश कर लिया है कि आप उसका परित्याग करने में हिचकिचाते हैं। इसीसे जैसा होना चाहते हैं वैसा हो नहीं पाते। आप मन के निर्माण के चक्रव्यूह में मत फँसिये, शरीर को ही वैसा बना लीजिये। मन भी वस्तुतः एक शारीरिक विकार ही है। शरीर अपने अभीष्ट स्थान पर जब बैठ जाता है तो मन भी अपनी उछल-कूद बंद कर देता है। **पहले मन ठीक नहीं होता, मन को ठीक किया जाता है।** आप जो सेवाकार्य कर रहे हैं वह आपकी साधना है। सम्पूर्ण जीवन को उसीमें परिनिष्ठित करना है। अतः **साध्य स्थिति को बारम्बार अनुभव का विषय बनाना ही साध्य में स्थित होना है।** ❑

अमृतबिंदु - पूज्य बापूजी

✲ छोटा काम करने से व्यक्ति छोटा नहीं होता, बड़ा काम करने से व्यक्ति बड़ा नहीं होता; बड़ी समझ से व्यक्ति बड़ा होता है और छोटी समझ से छोटा होता है।

✲ व्यर्थ का बोलना, व्यर्थ का खाना, व्यर्थ के विकारों को पोषण देना - जिस दिन यह अच्छा न लगे उस दिन समझ लेना कि भगवान, गुरु और हमारे पुण्य - तीनों की कृपा एक साथ उतर रही है।



विद्यार्थी संस्कार



पुण्य क्या, पाप क्या ?

- संत पथिकजी

विवेकीजनों का निर्णय है कि अध्ययन में रत रहनेवालों या विद्यार्थियों के लिए मनोरंजन आवश्यक नहीं है, कुछ समय तक मौन रहना, शांत रहना तथा बीती हुई घटनाओं का मनन व भविष्य का चिंतन छोड़कर शुद्ध वायु में टहलना, प्राकृतिक सौंदर्य का निरीक्षण करना, प्रत्येक दृश्य के पीछे गति देनेवाली नित्य विद्यमान सत्ता को ध्यान से देखना आवश्यक है ।



थके हुए मस्तिष्क के लिए अध्ययन का विषय-परिवर्तन आवश्यक है, मनोरंजन अनावश्यक है क्योंकि मनोरंजन विषयासक्त भोगी के लिए है । विद्यार्थी के लिए मनोरंजन पाप है, इससे शक्ति का, समय का दुरुपयोग होता है । विद्यार्थी के लिए मन का संयम पुण्य है । संयम से शक्ति संचित होती है और संचित शक्ति से श्रम सधता है ।

मन कभी थकता नहीं है, वह एक विषय को बार-बार दुहराते रहने से ऊबता है । मन को कुछ-न-कुछ नया विषय चाहिए । नया देखने को मिले, नया सुनने को मिले, नया स्वाद मिले । जब घर में नया नहीं मिलता तब मनुष्य घर के बाहर नया खोजता है, सर्कस, नाट्यशाला व सिनेमाघरों में जाता है और जब वहाँ नहीं जा पाता तब बैठकर ताश खेलता है या व्यर्थ बातों में समय काटता है - यही पतनकारी पाप है ।

पुण्यवान विद्यार्थी आरम्भ से विनम्र, सरल, आज्ञापालक, सेवा में आलस्य न करनेवाले तथा अध्ययन में तत्पर रहते हुए पापकर्मों के विरोधी होते हैं तथा धर्मचर्चा, सत्कथा एवं संत-महात्माओं में श्रद्धा रखते हैं । किंतु पापों से जकड़े हुए मूढ़ बालक-विद्यार्थी श्रद्धावान, धर्मप्रेमी व परमात्म-उपासक नहीं होते ।

किसी भी विद्यार्थी के लिए अध्ययन में आलस्य करना पाप है और आलस्य त्यागकर अध्ययन में प्रीति व लगन पूर्वक लग जाना पुण्य है ।

अध्ययन काल में किसीसे ईर्ष्या करना, कलह करना, क्रोधावेग में गाली-गलौज करना, मार-पीट करना, तोड़-फोड़ करना शक्ति को नष्ट करनेवाला पाप है । इसके विपरीत अपने अध्ययन में आलस्य न करना, लोभी की भाँति लगे रहना, प्रसन्न रहना पुण्यमय तप है ।

जब तक आपके पास पाप करने की कुछ भी शक्ति है तब तक उसी शक्ति से, उसी समय से पुण्यकर्म कर सकते हो ।

आप बालक हो या युवक हो, इतने पुण्यवान तो हो ही कि इस समय ये अपने हित की बातें पढ़ रहे हो या सुन रहे हो । अब यह भी समझ लो कि आप अपने पुण्यों को सुख का उपभोग करते हुए घटा रहे हो या दूसरों की सेवा करते हुए बढ़ा रहे हो । ❐

प्रेरक पंक्तियाँ

धरती चलती सूरज चलता,
चलते चाँद सितारे हैं ।
आत्मविश्वास से कदम बढ़ाना,
जैसे सद्गुरु-इशारे हैं ।
क्रियाशील हो शक्ति जगाओ,
बदल जायें नजारे हैं ।
मंजिल अवश्य मिलेगी तुमको,
आत्मदेव साथ तुम्हारे हैं ।।



सीखने के लिए या मिटने के लिए ?

एक बार रमण महर्षि के पास कोई व्यक्ति पहुँचा और बोला : ''महात्मन् ! मैं आपके चरणों में कुछ सीखने के लिए आया हूँ ।''

महर्षिजी ने कहा : ''तुम मेरे चरणों में सीखने के लिए आये हो तब तो तुम गलत स्थान पर आ गये । जाओ, किसी अन्य से सीखना । अगर तुम मेरी शरण में मिटने के लिए आये हो, अपने-आपको खोने के लिए आये हो, जो तुम सीखे हो उसे भुला देने के लिए आये हो तो तुम आ सकते हो ।'' ❑

ये दोनों दुर्लभ हैं

लभ्यते खलु पापीयान् नरो नु प्रियवागिह ।
अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।

'सदा मन को प्रिय लगनेवाले वचन बोलनेवाला महापापी मनुष्य भी इस संसार में अवश्य मिल सकता है परंतु अप्रिय होते हुए भी हितकर वचन को कहने और सुनने वाले दोनों दुर्लभ हैं ।' **(महाभारत, सभा पर्व : ६४.१६)**

कैसे हो निरंतर भगवच्चिंतन ?

प्रश्न : भगवान का निरंतर चिंतन कैसे हो ?

उड़िया बाबाजी : अपने शरीर का चिंतन करने के लिए क्या किसी प्रयत्न की आवश्यकता है ? (इसी प्रकार भगवान भी तो अपने आत्मा ही हैं ।) पहले भगवान का चिंतन करना पड़ता है परंतु पीछे तो वैसा स्वभाव ही बन जाता है । बालक को पहले कितना परिश्रम करना पड़ता है पर पीछे तो विद्या अभ्यस्त हो ही जाती है ।

प्रश्न : आरम्भ में अभ्यास में कैसे प्रवृत्ति होती है ?

बाबाजी : सत्संग से ही अभ्यास में प्रवृत्ति होती है । गुरु की जैसी आज्ञा हो, आँख मूँदकर वैसा ही करे । आरम्भ में स्वरूपज्ञानादि का विचार न करे (अपितु सत्संग सुनकर आज्ञापालन पर जोर दे) ।

अमृतबिंदु - पूज्य बापूजी

*** भगवन्नाम के जप व भगवद्-ध्यान का नियम रखना चाहिए । विद्यार्थी अगर त्रिकाल संध्या करने का नियम रख ले तो कुछ ही समय में उसकी अच्छी आदतों का विकास होगा और बुरी आदतें क्षीण होने लगेंगी । उसे ऐसी पढ़ाई पढ़नी चाहिए कि जीवन में धैर्य, शांति, मिलनसार स्वभाव, कार्य में तत्परता, ईमानदारी, निर्भयता और आध्यात्मिक तेज बढ़े ! सब छोड़कर मरना पड़े उसके पहले जिसका सब कुछ है उस सर्वेश्वर का अपने आत्म-परमात्मरूप में अनुभव हो जाय ।**

*** भगवत्प्राप्ति के लिए बाह्य योग्यताओं, प्रमाणपत्रों की कोई जरूरत नहीं है और उनकी कोई कीमत भी नहीं है । भगवत्प्राप्ति के लिए एक ही जरूरत है कि भगवान को पाने का ईमानदारी का यत्न हो ।**

शरीर की अपवित्रता और भावों की पवित्रता

(पिछले अंक में आपने शिव पुराण में सनत्कुमारजी द्वारा भगवान वेदव्यासजी को वर्णित शरीर की अपवित्रता के बारे में पढ़ा। अब आगे...)

भावशुद्धि का महत्त्व

''हे वेदव्यासजी ! गंगा के सम्पूर्ण जल से एवं पर्वत के समान मिट्टी के ढेर से भले ही कोई दूषित मनोभाववाला मनुष्य अपने शरीर की मरणपर्यंत शुद्धि करता रहे किंतु उससे वह शुद्ध नहीं होता है। दुष्टात्मा तीर्थ-स्नानों से अथवा तपों से कदापि शुद्ध नहीं होता है। क्या तीर्थ में धोयी गयी कुत्ते की खाल कभी शुद्ध हो सकती है ? दूषित मनोभाववाला (शुद्ध होने के लिए) भले ही अग्नि में प्रवेश करे तो उसका शरीर भस्म अवश्य हो जाता है किंतु उसे स्वर्ग या अपवर्ग (मोक्ष) कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। स्वभावदुष्ट व्यक्ति घी अथवा तेल से विधिपूर्वक प्रज्वलित की गयी, दक्षिणावर्त ज्वालाओंवाली प्रशस्त अग्नि में प्रविष्ट होकर भले ही भस्म हो जाय किंतु उसे धर्म अथवा किसी अन्य फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है। **गंगा आदि तीर्थों में मछलियाँ तथा देवालयों में पक्षी नित्य निवास करते हैं किंतु वे भावहीन होने के कारण फल नहीं पाते, उसी प्रकार भावदुष्ट को तीर्थ-स्नान एवं दान से कोई फल प्राप्त नहीं होता है। सभी प्रकार के कर्मों में भावशुद्धि को महान शौच कहा गया है** क्योंकि कांता (पत्नी) का आलिंगन अन्य भाव से किया जाता है और पुत्री का आलिंगन अन्य भाव से किया जाता है। अभिन्न अर्थात् समान रूपवाली वस्तुओं में भी मन के भेद के कारण भाव-भेद हो जाता है। स्त्री (अपने) पति में अन्य भाव रखती है और पुत्र के प्रति अन्य भाव रखती है। इस भाव की अपार महिमा को पूर्णरूप से देखिये, स्त्री से आलिंगित होने पर भी भावहीन पुरुष को स्त्री के प्रति कामना नहीं जगती। यदि चित्त में काम, क्रोध एवं लोभ इन तीनों की चिंता विद्यमान रहे तो अनेक प्रकार के अन्नादि तथा स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों को भी मनुष्य (रुचिपूर्वक) नहीं खा सकता है।



भावना करने से ही मनुष्य बंधन में पड़ता है तथा भावना के अभाव में उससे छुटकारा भी प्राप्त हो जाता है। भाव से शुद्ध आत्मावाला ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। ब्रह्मज्ञानरूपी निर्मल जल और वैराग्यरूपी मिट्टी से मनुष्यों की अविद्या, राग रूपी मल-मूत्र के लेप की दुर्गंध दूर हो जाती है।

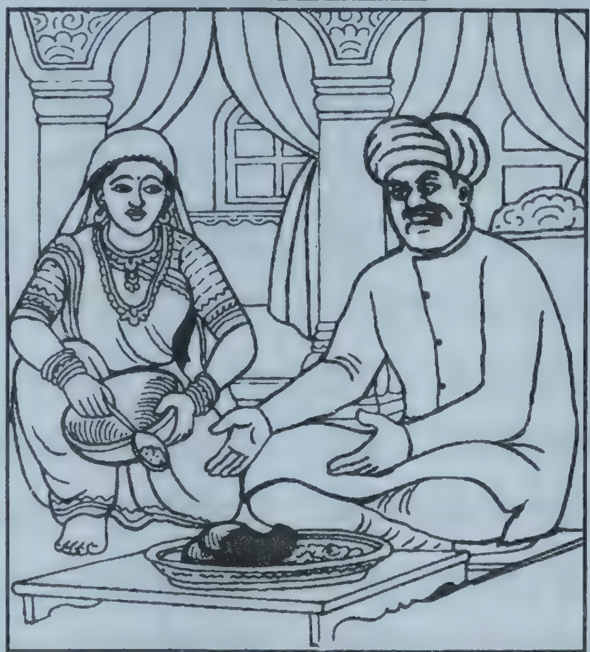
परम सुख और परम दुःख का कारण

यह शरीर तो स्वभाव से ही अपवित्र कहा गया है। जिसमें केवल त्वचा ही सार होती है ऐसे केले के वृक्ष की भाँति यह निस्सार है। जो बुद्धिमान पुरुष देह को इस प्रकार का दोषयुक्त जानकर विरक्त हो जाता है, वह शरीर के भोगों से उत्पन्न होनेवाले भावों से उपराम हुए चित्तवाला एवं निर्मल बुद्धि से युक्त हो जाता है। वह संसार से पार हो जाता है और जीवन्मुक्त हो जाता है किंतु जिसे संसार की असारता का ज्ञान नहीं होता वह केले के खम्भे के समान (भंगुर संसार को नित्य मानकर) इसे दृढ़ता से पकड़े रहता है (लेकिन उसे कुछ हाथ नहीं लगता)।'' →

परलोक के भोजन का स्वाद

एक सेठ ने अन्नसत्र खोल रखा था । उनमें दान की भावना तो कम थी पर समाज उन्हें दानवीर समझकर उनकी प्रशंसा करे यह भावना मुख्य थी । उनके प्रशंसक भी कम नहीं थे । थोक का व्यापार था उनका । वर्ष के अंत में अन्न के कोठारों में जो सड़ा-गला अन्न बिकने से बच जाता था, वह अन्नसत्र के लिए भेज दिया जाता था । प्रायः सड़ी ज्वार की रोटी ही सेठ के अन्नसत्र में भूखों को प्राप्त होती थी ।

सेठ के पुत्र का विवाह हुआ । पुत्रवधू घर आयी । वह बड़ी सुशील, धर्मज्ञ और विचारशील थी । उसे जब पता चला कि उसके ससुर द्वारा खोले गये अन्नसत्र में सड़ी ज्वार की रोटी दी जाती है तो उसे बड़ा दुःख हुआ । उसने भोजन बनाने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली । पहले ही दिन उसने अन्नसत्र से सड़ी ज्वार का आटा मँगवाकर एक रोटी बनायी और सेठ जब भोजन करने बैठे तो उनकी थाली में भोजन के साथ वह रोटी भी परोस दी । काली, मोटी रोटी देखकर कौतूहलवश सेठ ने पहला ग्रास उसी रोटी का मुख में डाला । ग्रास मुँह में जाते ही वे थू-थू करने लगे और थूकते हुए बोले : ''बेटी ! घर में आटा तो बहुत है ! यह तूने रोटी बनाने के लिए सड़ी ज्वार का आटा कहाँ से मँगाया ?''



पुत्रवधू बोली : ''पिताजी ! यह आटा परलोक से मँगाया है ।''

ससुर बोले : ''बेटी ! मैं कुछ समझा नहीं ।''

''पिताजी ! जो दान-पुण्य हमने पिछले जन्म में किया वही कमाई अब खा रहे हैं और जो हम इस जन्म में करेंगे वही हमें परलोक में मिलेगा । हमारे अन्नसत्र में इसी आटे की रोटी गरीबों को दी जाती है । परलोक में हमें केवल इसी आटे की रोटी पर रहना है । इसलिए मैंने सोचा कि अभी से हमें इसे खाने का अभ्यास हो जाय तो वहाँ कष्ट कम होगा ।''

सेठ को अपनी गलती का एहसास हुआ । उन्होंने अपनी पुत्रवधू से क्षमा माँगी और अन्नसत्र का सड़ा आटा उसी दिन फिंकवा दिया । तब से अन्नसत्र में गरीबों व भूखों को अच्छे आटे की रोटी मिलने लगी ।

आप दान तो करो लेकिन दान ऐसा हो कि जिससे दूसरे का मंगल-ही-मंगल हो । जितना आप मंगल की भावना से दान करते हो उतना दान लेनेवाले का तो भला होता ही है, साथ में आपका भी इहलोक और परलोक सुधर जाता है । दान करते समय यह भावना नहीं होनी चाहिए कि लोग मेरी प्रशंसा करें, वाहवाही करें । दान इतना गुप्त हो कि देते समय आपके दूसरे हाथ को भी पता न चले । ❐

⟶ परम सुख और परम दुःख के रहस्य को उद्घाटित करते हुए सनत्कुमारजी आगे कहते हैं : ''जो करोड़ों ग्रंथों में कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में कहता हूँ :

ममेति परमं दुःखं न ममेति परं सुखम् ॥

'यह मेरा है' - यह परम दुःख है और 'यह मेरा नहीं है' - यह परम सुख है । (**'मम'** अर्थात् - यह मेरा है - बेटा मेरा है, पत्नी मेरी है, धन मेरा है... इस ममता में परम दुःख है । **'न मम'** अर्थात् यह मेरा नहीं है - इसमें परम सुख है ।)'' ❐

एकादशी को चावल खाना वर्जित क्यों ?

संस्कृति विज्ञान



पूज्य बापूजी एकादशी के बारे में एक वैज्ञानिक रहस्य बताते हुए कहते हैं : ''संत डोंगरेजी महाराज बोलते थे कि एकादशी के दिन चावल नहीं खाना चाहिए । जो खाता है, समझो वह एक-एक चावल का दाना खाते समय एक-एक कीड़ा खाने का पाप करता है । संत की वाणी में हमारी मति-गति नहीं हो तब भी कुछ सच्चाई तो होगी । मेरे मन में हुआ कि 'इस प्रकार कैसे हानि होती होगी ? क्या होता होगा ?'

तो शास्त्रों से इस संशय का समाधान मेरे को मिला कि प्रतिपदा से लेकर अष्टमी तक वातावरण में से, हमारे शरीर में से जलीय अंश का शोषण होता है, भूख ज्यादा लगती है और अष्टमी से लेकर पूनम या अमावस्या तक जलीय अंश शरीर में बढ़ता है, भूख कम होने लगती है । चावल पैदा होने और चावल बनाने में खूब पानी लगता है । चावल खाने के बाद भी जलीय अंश ज्यादा उपयोग में आता है । जल के मध्यम भाग से रक्त एवं सूक्ष्म भाग से प्राण बनता है । सभी जल तथा जलीय पदार्थों पर चन्द्रमा का अधिक प्रभाव पड़ने से रक्त व प्राण की गति पर भी चन्द्रमा की गति का बहुत प्रभाव पड़ता है । अतः यदि एकादशी को जलीय अंश की अधिकतावाले पदार्थ जैसे चावल आदि खायेंगे तो चन्द्रमा के कुप्रभाव से हमारे स्वास्थ्य और सुव्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ता है । जैसे कीड़े मरे या कुछ अशुद्ध खाया तो मन विक्षिप्त होता है, ऐसे ही एकादशी के दिन चावल खाने से भी मन का विक्षेप बढ़ता है । तो अब यह वैज्ञानिक समाधान मिला कि अष्टमी के बाद जलीय अंश आंदोलित होता है और इतना आंदोलित होता है कि आप समुद्र के नजदीक डेढ़-दो सौ किलोमीटर तक के क्षेत्र के पेड़-पौधों को अगर उन दिनों में काटते हो तो उनको रोग लग जाता है ।

अभी विज्ञानी बोलते हैं कि मनुष्य को हफ्ते में एक बार लंघन करना (उपवास रखना) चाहिए लेकिन भारतीय संस्कृति कहती है : लाचारी का नाम लंघन नहीं... भगवान की प्रीति हो और उपवास भी हो । 'उप' माने समीप और 'वास' माने रहना - एकादशी व्रत के द्वारा भगवद्-भक्ति, भगवद्-ध्यान, भगवद्-ज्ञान, भगवद्-स्मृति के नजदीक आने का भारतीय संस्कृति ने अवसर बना लिया ।

उपवास कैसे खोलें ?

आप जब एकादशी का व्रत खोलें तो हलका-फुलका नाश्ता या हलका-फुलका भोजन चबा-चबा के करें । एकदम खाली पेट हो गये तो ठाँस के नहीं खाना चाहिए और फलों से पेट नहीं भरना चाहिए अन्यथा कफ बन जायेगा । मूँग, चने, मुरमुरा आदि उपवास खोलने के लिए अच्छे हैं । लड्डू खा के जो उपवास खोलते हैं वे अजीर्ण की बीमारी को बुलायेंगे । एकदम गाड़ी बंद हुई और फिर चालू करके गेयर टॉप में डाल दिया तो डबुक-डबुक... करके बंद हो जायेगी ।''

भगवान मिले तो आधिदैविक लाभ है पर आत्मा और परमात्मा का तात्त्विक स्वरूप, वैदिक स्वरूप 'अयं आत्मा ब्रह्म ।' - यही मेरा आत्मा ब्रह्म है, यही घटाकाश महाकाश है - इस प्रकार अपने को और भगवान को तत्त्वरूप से जानना यह आध्यात्मिक लाभ है । - पूज्य बापूजी



ऐसे समर्थ सद्गुरु व साधक विरले ही होते हैं

- संत निलोबाजी

संत निलोबाजी अपने सद्गुरु संत तुकारामजी को विरह-व्यथा से व्याकुल होकर पुकार रहे थे। तब भगवान विट्ठल प्रकट हुए। निलोबाजी ने उन्हे जो रोमांचकारी वचन कहे व निलोबाजी की अभंग-गाथा में आज भी कोई पढ़ सकता है। प्रस्तुत है उन दिव्य वचनों का भावानुवाद :

हे प्रभु ! आपको यहाँ किसने बुलाया ? किसी भी प्रकार की प्रार्थना किये बिना ही आप यहाँ क्यों आये हैं ? हिरण्यकशिपु दैत्य को दंड देने के लिए खम्भे से प्रकट होकर आप प्रह्लाद के रक्षक बन गये थे लेकिन इस प्रकार का कोई संकट मुझ पर आया नहीं है तो भी आपने व्यर्थ में यहाँ आने का परिश्रम क्यों किया ? हे भगवान ! तुम्हें पहचानने की क्षमता हममें नहीं है किंतु गुरुकृपा होने पर ही हम तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को पहचान सकते हैं। इसलिए हम तो केवल सद्गुरु श्री तुकारामजी को ही सदा पुकारते रहते हैं।



कृपावंत सद्गुरुनाथ तुकाराम स्वामी ने आकर मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखा और अपना कृपा-प्रसाद दे के मुझे परम सुखी कर दिया। सद्गुरु के दिव्य स्वरूप का गुणगान करने के लिए मेरी मति को बढ़ा के मुझे स्फूर्ति दे दी। यहाँ मैं बोलता हुआ दिख रहा हूँ फिर भी यह जो बोलने की सत्ता है वह मेरी न हो के मेरे सद्गुरु तुकारामजी की ही है।

यह कोई सुनी-सुनाई बात नहीं है। वास्तव में सद्गुरु की महिमा ही अद्भुत है। वे जीव में स्थित जीवपने का कलंक मिटाकर अर्थात् तथाकथित जीव की जीवत्व की मलिन मान्यता हटा के उसे कभी न भंग होनेवाले ब्रह्मस्वरूप में जगा देते हैं। वे जिनका भी हाथ पकड़ लेते हैं (जिन्हें भी अपनी शरण में लेते हैं) उन्हें अपने मूल स्वरूप में स्थित कर देते हैं। हृदयपूर्वक उनकी सेवा करने से वे जीव को परम भाग्यवान बना देते हैं।

जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का बोध स्वयं नहीं होता, सद्गुरु उसका अनुभव करा देते हैं यही सच्चे सद्गुरु की पहचान है। इस प्रकार सद्गुरु द्वारा शिष्यों को ब्रह्म का बोध कराया जाते हुए उनके (शिष्यों के) अंतःकरण में दिव्य ज्ञान-प्रकाश की क्या कमी रहेगी ? जो आत्मज्ञानरूपी सद्वस्तु के अभ्यास में नित्य तन्मय रहते हैं, उन्हें गुरुकृपा से अपने सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति होती है। संत निलोबाजी कहते हैं कि ऐसी सद्गुरु की ब्रह्मबोध कराने की कला है किंतु ब्रह्मबोध करानेवाले ऐसे समर्थ सद्गुरु और वह बोध प्राप्त कर लेनेवाला साधक - दोनों विरले ही होते हैं। ❑

शिष्य को गुरु की पूजा करनी चाहिए क्योंकि गुरु से बड़ा और कोई नहीं है। गुरु इष्टदेवता के पितामह हैं। भक्तों के लिए भगवान हमेशा गुरु के रूप में पथप्रदर्शक बनते हैं।

गुरु ही मार्ग हैं, जीवन हैं और आखिरी ध्येय हैं। गुरुकृपा के बिना किसीको भी सर्वोत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

(स्वामी शिवानंदजी के 'गुरुभक्तियोग' सत्शास्त्र से)

परमात्मप्राप्ति में बाधक असुर और उन्हें मारने के उपाय

- पूज्य बापूजी

पद्म पुराण के उत्तर खंड में आया है कि जय-विजय भगवान के पार्षद थे । 'जय' माने 'अहंता' और 'विजय' माने 'ममता' । भगवान सच्चिदानंद होने पर भी अहंता और ममता के कारण अनुभव में नहीं आते । जय-विजय भगवान के पार्षद बने हुए हैं लेकिन उन्हें अपनी अहंता है, अपने पद की ममता है ।



सनकादि ऋषि ब्रह्मवेत्ता थे, उनको अपना सच्चिदानंद स्वभाव हस्तामलकवत् (हाथ पर रखे आँवले की तरह सुस्पष्ट एवं प्रत्यक्ष) था । सनकादि ऋषि योगबल से पहुँचे भगवान नारायण से मिलने । जय-विजय ने उनका अपमान करके ३-३ बार रोक दिया ।

सनकादि ऋषियों ने कहा : ''तुम भगवान के धाम में हो फिर भी तुम्हारी अहंता-ममता नहीं गयी ! तुम दैत्य जैसा व्यवहार कर रहे हो और भगवान के पार्षद कहलाते हो ! ३ बार रोका तो जाओ, तुमको ३ बार दैत्य योनि में भटकना पड़ेगा !''

सनकादि ऋषियों की नाराजगीभरी आवाज सुनकर भगवान नारायण आये । जय-विजय को बोले : ''तुम बहुत उद्दंड हो गये थे, मुझे सजा देनी थी तो संत मेरा ही रूप हैं । ऋषियों ने जो उपदेश या शाप दिया है, वह उचित ही दिया है, ऐसा ही हो ।''

जय-विजय गिड़गिड़ाने लगे ।

भगवान ने कहा : ''आखिर तुम मेरे सेवक हो, तुमको ३-३ बार जन्म लेना पड़ेगा तो हम भी आ जायेंगे तुम्हारे को उस-उस जन्म से पार करने के लिए ।''

वे ही जय-विजय हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने । हिरण्याक्ष को भगवान ने वाराह अवतार धारण करके मारा और हिरण्यकशिपु को मारने के लिए भगवान ने नृसिंह रूप धारण किया ।

सनक ऋषि ने कहा : ''अच्छा, भगवान ! आप जाओगे अपने सेवकों को शुद्ध करने तो वह लीला देखने, आपके अवतरण में सहयोगी होने हम भी आयेंगे ।

भगवान ! आप भक्त की पुकार से आओगे तो हम आपके भक्त बन जायेंगे । हम हिरण्यकशिपु के घर प्रह्लाद हो के आयेंगे । वह हमको भगवद्भक्ति करने से रोकेगा-टोकेगा, डाँटेगा... यही हमारा विरोधी वहाँ ज्यादा ऊधम करेगा तो आप वहाँ प्रकट होना ।''

तो सनक ऋषि प्रह्लाद बन के आये । भगवान प्रह्लाद की तपस्या, समता के प्रभाव से, हिरण्यकशिपु की उद्दंडता को नियंत्रित करने के लिए एवं समाज को ज्ञान, भक्ति व लीला-अमृत चखाने के लिए नृसिंहरूप में आये ।

हिरण्यकशिपु ने वरदान माँगा था कि 'मैं न दिन को मरूँ न रात को मरूँ...'

अहंकार दिन में भी नहीं मरता, रात में भी नहीं मरता ।

'न अंदर मरूँ न बाहर मरूँ...'

अहंकार घर के अंदर भी नहीं मरता और बाहर भी नहीं मरता ।

'न अस्त्र से मरूँ न शस्त्र से मरूँ...'

अहंकार अस्त्र-शस्त्र से भी नहीं मरता है ।

'देवता से न मरूँ, दानव से न मरूँ, मानव से न मरूँ...'

अहंकार इन सभी साधनों से नहीं मरता है । यह कथा का अमृतपान कराने के लिए भगवान की साकार लीला है । तो अहंकार कैसे मरता है ?

भगवान ने देखा कि तेरे को जो भी वरदान मिले, उनसे विलक्षण अवतार भी तो हम अपने भक्त के लिए धारण कर सकते हैं ! तो नृसिंह अवतार... ! धड़ तो नर का और चेहरा व नाखून सिंह के । 'अंदर न मरूँ, बाहर न मरूँ...' तो चौखट पर मरो । 'सुबह न मरूँ, शाम को न मरूँ...' तो संधिकाल में मरो ।

हमारे और ईश्वर के बीच जो अहंकार है वह संधिकाल में मरता है । श्वास अंदर गया और बाहर आया उसके बीच में जो संधिकाल है उसको देखोगे तो अहंकार गल जायेगा और ईश्वर सच्चिदानंद का स्वभाव प्रकट होगा ।

'अस्त्रों-शस्त्रों से न मरूँ...' लेकिन वह सूक्ष्म समझदारीरूपी पैने नाखूनों से मरता है ।

हिरण्याक्ष ममता है और हिरण्यकशिपु अहंता है । इन अहंता और ममता के कारण जो दुर्लभ नहीं है, निकट है ऐसा परमात्मा नहीं दिखता है । ये दो असुर हैं उसके द्वार पर जो ठाकुरजी से मिलने में अड़चन करते हैं । तो अहंता और ममता को मारने का उपाय है 'अजपा गायत्री'★ अथवा उच्चारण करो 'हरि ओऽऽऽ...म्' तो हरि का 'ह' और ॐ का 'म्' - इनके बीच में संकल्प-विकल्प नहीं होगा, अहंकार की दाल नहीं गलेगी, चंचलता नहीं आयेगी, ममता नहीं घुसेगी और दूसरा कुछ नहीं आयेगा । थोड़े दिन यह अभ्यास करो तो जैसे पतझड़ में पेड़ की बहुत सारी सफाई हो जाती है, ऐसे ही बहुत सारे संकल्प-विकल्प, अहंता-ममता के परिवार और वासनाओं की सफाई हो जायेगी । चित्त में शांति आने लगेगी । ❐

★ श्वासोच्छ्वास में स्वतः होनेवाले 'सोऽहम्' (श्वास के अंदर जाते समय 'सोऽ...' और बाहर आते समय 'हम्...') के जप को साक्षीरूप से देखते हुए उसके अर्थ ('वह परमात्मा मैं हूँ') का चिंतन करते हुए शांत होते जाना । यह कठिन लगे तो श्वासोच्छ्वास की मानसिक रूप से भगवन्नाम-जपसहित गिनती (श्वास अंदर जाय तो 'ॐ', बाहर आये तो '१', श्वास अंदर जाय तो 'शांति' या 'आनंद' अथवा 'माधुर्य', बाहर आये तो '२'... इस प्रकार की गिनती) करते हुए शांत होते जायें ।

काव्य गुंजन

तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ

देख रहा हूँ ध्यान लगाये,
तुम★ मुझमें हो मैं तुममें हूँ ।
जो जाने सोई यह गाये,
तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ ॥
कहाँ-कहाँ पर भूले भटके,
बंद रहे पट अंतर घट के ।
जब तक हम यह समझ न पाये,
तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ ॥
खोज फिरे मंदिर मूरत में,
मुग्ध हुए अपनी ही कृति में ।
दृष्टि खुली तो यही दिखाये,
तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ ॥
कोई तुमको निर्गुण माने,
कोई तुमको सगुण बखाने ।
अकथ विश्वमय रूप बनाये,
तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ ॥
तुम ऐसे हो या वैसे हो,
जो कुछ भी हो या जैसे हो ।
पथिक यही आनंद मनाये,
तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ ॥

– संत पथिकजी

★ अंतरात्म-परमात्मदेव

संतों की हितभरी अनुभव-वाणी

सद्गुरु की सेवा उत्तम है



- गुरु अमरदासजी

हे भाई ! सर्वव्यापक परमात्मा हरि गुणहीन जीवों को सद्गुरु की सेवा में लगाकर क्षमा करते हैं। सद्गुरु की सेवा उत्तम है क्योंकि उनकी सेवा करने से भगवन्नाम में चित्त लगता है।

मंत्राभ्यास से अभीष्ट सिद्धि



- स्वामी प्रणवानंदजी

मन को हमेशा गुरुप्रदत्त मंत्राभ्यास में नियत रखना चाहिए। इससे विभिन्न प्रकार की अवस्था तथा वैचित्र्य के अंदर भी अपने वैशिष्ट्य की रक्षा कर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकोगे।

एक ब्रह्मवेत्ता से सबका कल्याण



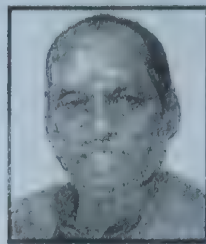
- श्री जयदयालजी गोयंदका

एक (ब्रह्मवेत्ता) महात्मा से सारे जीवों का कल्याण हो सकता है, कम-से-कम मनुष्यमात्र का तो कल्याण हो ही सकता है। एक दीपक से लाखों दीपक जल सकते हैं किंतु दूसरे दीपकों में तेल और बत्ती होनी चाहिए। वैसे ही महात्मा के प्रति श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए।

अमृतबिंदु - पूज्य बापूजी

जो ज्ञान थकान मिटा देता है, जन्म-जन्म के पापों को दूर कर देता है, कर्तापन को भगा देता है, भोक्तापन की भ्रांति को तोड़ देता है, अहंकार को अलविदा कर देता है, वह 'आत्मज्ञान' है।

गुरुप्रसाद सर्व सिद्धिप्रद है



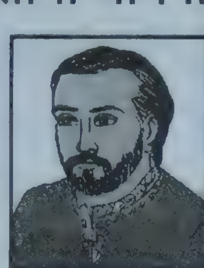
- स्वामी मुक्तानंदजी

श्रीगुरु के बताये हुए गुह्य मंत्र-साधन को दृढ़ता से भजना चाहिए, गुप्तरूप से जपना चाहिए। जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज कालांतर में विशाल वृक्ष होकर फल-फूल देता है, वैसे ही गुरुप्रसाद सर्व सिद्धिप्रद है।

साधक का संशयनाशक कौन ?

- संत रज्जबजी

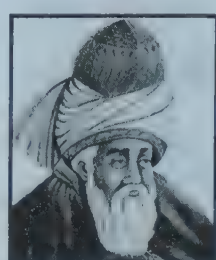
सद्गुरु बिन संदेह को, रज्जब भाने कौन।
सकल लोक फिर देखिया, निरखे तीनों भौन॥



सम्पूर्ण लोक में घूमकर देखा है तथा तीनों भुवनों को विचार द्वारा भी देखा है, उनमें साधक के ब्रह्म-आत्मा विषयक संशय को नष्ट कर सके ऐसा सद्गुरु बिना कोई भी नहीं है।

अतिशीघ्र उसका पल्ला पकड़

- सूफी संत मौलाना जलालुद्दीन रूमी



दामने ओ गीर जूदतर वेगुमां।
ता रिही आज
आफते आखिरी जमां॥

'हे मनुष्य ! तू अतिशीघ्र उस परमात्मा का पल्ला पकड़ ले ताकि तू अंत समय की विपत्तियों से आज ही बच सके।'

गतांक की 'ऋषि प्रसाद प्रश्नोत्तरी' के उत्तर

(१) गुरुकुल-परम्परा (२) मुर्दा
(३) गुरुसेवा (४) सदुपयोग

गृहस्थ कौन और वैरागी कौन ?

(**'पराशर-मैत्रेय संवाद'** अंक ३३८ से आगे)

मैत्रेय अपने गुरुदेव पराशरजी के सामने अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहते हैं : ''प्रथम मैंने आपसे प्रश्न किया था कि 'मोक्ष का उपाय कहिये' तो आपने कहा था कि 'तू आप-ही-आप स्वयंप्रकाश-स्वरूप है, तेरे को बंध-मोक्षरूप अंधकार की निवृत्ति-प्राप्ति हेतु किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं', अब कहते हो : कुछ कर तो कुछ होवे ?''



पराशरजी : ''यही कर कि 'न मैं हूँ न जगत है, न जीव न ब्रह्म है, एक अद्वितीय नारायण है।''

मैत्रेय : ''जब मैं परिच्छिन्न (सीमित) अहंकाररूप जीव नहीं तो नारायण से क्या प्रयोजन है परंतु मैं तो जीवत्व के अहंकार में बँधा हूँ, कैसे कहूँ कि 'जीव ब्रह्म है' ?''

''जीव-ब्रह्म का रूप क्या है ?''

''मैंने जीव-ब्रह्म का रूप नहीं देखा।''

''जब रूप नहीं देखा तो नाम कैसे ग्रहण किया ?''

''सुनकर कहता हूँ।''

''जिससे तूने सुना है उसीसे जीव-ब्रह्म का रूप पूछ।''

''उसने भी सुनकर कहा है।''

''सब सुनकर कहते हैं पर मूल नहीं खोजते। हे मूर्ख ! जैसे सुन के ही जीव-ब्रह्म का निश्चय किया है, वैसे ही मुझसे भी सुन करके 'जीव ब्रह्मरूप है' ऐसा निश्चय कर और जो तुझको इच्छा देखने (अनुभव करने) की हो तो अतीत (दृश्य-अहंकार से परे) हो।''

''मुझे वैराग्य हुआ है, चाहता हूँ कि गृहस्थ से उदासीन होऊँ।''

''जो प्राणी - मृग, वनचर आदि अनेक जीव वनों में फिरते हैं, तू भी उनकी पंक्ति में प्रवेश कर। हे मैत्रेय ! लोगों ने जो पुत्र, स्त्री, धन, गृह आदि को गृहस्थ समझा है वह झूठ है क्योंकि 'गृह' शरीर को कहते हैं, जो शरीर के अहंकार में बँधे हैं वे ही 'गृहस्थ' हैं और जो इस अहंकार से मुक्त हैं वे ही 'वैरागी' हैं। हे मैत्रेय ! एक आश्रम को त्यागना और दूसरे आश्रम को ग्रहण करना, वैसे ही एक नाम त्याग के दूसरा नाम रखना तथा सफेद रंग के वस्त्रों को छोड़ के दूसरे रंग के वस्त्र पहनना, यज्ञोपवीत तोड़ के कंठी आदि अनेक पदार्थ बाँधना, शास्त्र-प्रतिपाद्य संबंधियों से प्रीति त्याग के अशास्त्रोक्त संबंधी बनाकर प्रीति करना, सर्व को अपना आत्मा जान के प्रीति न करना किंतु रागपूर्वक प्रीति करना - यह व्यवहार विद्वानों को हँसने योग्य है।

हे मैत्रेय ! अतीत वही है जो अपने सहित सर्व को आत्मारूप जानता है। जो शरीर के अहंकार में बँधा है और चाह से अचाह नहीं हुआ वह मेरे वचनों को सुनकर प्रसन्न नहीं होता और जो नाम-रूप बंधन से छूटा है वह आप-ही-आप सुखरूप है। जब नाम-रूप का भेद मिटता है तब जीना-मरना भ्रम हो जाता है क्योंकि नाम-रूप स्वप्रकाश नहीं परप्रकाश हैं, तुझसे ही प्रकाश पाते हैं। इसलिए इस नाम-रूपात्मक देह आदि के अहंकार को त्याग, यही अहंकार चौरासी में डुलाता है।''

(**'आध्यात्मिक विष्णु पुराण'** से क्रमशः) ❑

नित्य उपासना की आवश्यकता क्यों ?

उपासना अमृत

'ऋग्वेद' (१.११३.११) में कहा गया है :

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो
ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥

'जो मनुष्य उषा के पहले शयन से उठकर आवश्यक (नित्य) कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान और धर्माचरण करनेवाले होते हैं। जो स्त्री-पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते-चालते हैं वे अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त होते हैं ।'

परमात्मा के नित्य पूजन, ध्यान, स्तुति के महत्त्व को महर्षि वेदव्यासजी ने महाभारत के अनुशासन पर्व (१४९.५-६) में बताया है कि "उसी विनाशरहित पुरुष का सब समय भक्ति से युक्त होकर पूजन करने से, उसीका ध्यान, स्तवन एवं उसे नमस्कार करने से पूजा करनेवाला सब दुःखों से छूट जाता है । उस जन्म, मृत्यु आदि ६ भावविकारों से रहित, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण लोकों के महेश्वर, लोकाध्यक्ष देव की निरंतर स्तुति करने से मनुष्य सब दुःखों से पार हो जाता है ।"

परमेश्वर की उपासना-अर्चना करने से आत्मिक शांति मिलती है। जाने-अनजाने किये हुए पाप नष्ट होते हैं। देवत्व का भाव मन में पैदा होता है । आत्मविश्वास बढ़ता है । सत्कार्यों में मन लगता है। अहंकाररहित होने की प्रेरणा मिलती है । बुराई से रक्षा होने लगती है । चिंता और तनाव से मन मुक्त होकर प्रसन्न रहता है। जीवन को शुद्ध, हितकारी, सुखकारी, आत्मा-परमात्मा में एकत्ववाली ऊँची सूझबूझ प्राप्त होती है । ऊँचे-में-ऊँचे ब्रह्मज्ञान की सूझबूझ से शोकरहित, मोहरहित, चिंतारहित, दुःखरहित, बदलनेवाली परिस्थितियों में अबदल आत्मज्ञान का परम लाभ मिलता है ।

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते ।
आत्मसुखात् परं सुखं न विद्यते ।
आत्मज्ञानात् परं ज्ञानं न विद्यते ।

पुण्यात्मा, धर्मात्मा, महानात्मा, दर्शनीय, चिंतनीय, मननीय, आदरणीय, सर्वहितकारी, पूर्ण परोपकारी, पूर्णपुरुष, आत्मसाक्षात्कारी, ब्रह्मवेत्ता के लिए महर्षि वसिष्ठजी कहते हैं : "हे रामजी ! जैसे सूक्ष्म जीवाणुओं से कीड़ी बड़ी है । कीड़ी से कीड़ा-मकोड़ा, कच्छ (कछुआ), बिल्ला, कुत्ता, गधा, घोड़ा आदि बड़े हैं पर सबसे बड़ा है हाथी। परंतु हे रामजी ! सुमेरु पर्वत के आगे हाथी का बड़प्पन क्या है ? ऐसे ही त्रिलोकी में एक-से-एक मान करने योग्य लोग हैं । देवताओं में मान योग्य एवं सुख-सुविधाओं में सबसे बड़ा इन्द्र है । किंतु ज्ञानवान के आगे इन्द्र का बड़प्पन क्या है ?"

संत तुलसीदासजी ने लिखा है :

'तीन टूक कौपीन की, भाजी बिना लूण ।
तुलसी हृदय रघुवीर बसे तो इन्द्र बापड़ो कूण ॥'

पीत्वा ब्रह्मरसं योगिनो भूत्वा उन्मतः ।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भासते अन्यस्य का वार्ता ?

ब्रह्मवेत्ता के आगे इन्द्र भी रंकवत् भासता है। इन्द्र को सुख के लिए अप्सराओं का नृत्य, साजवालों के साज, और भी बहुत सारी सामग्री की आवश्यकता पड़ती है जैसे पृथ्वी के बड़े

लोगों को सुख के लिए बहुत सारी सामग्री और लोगों की आवश्यकता पड़ती है लेकिन आत्मज्ञानी आत्मसुख में, आत्मानुभव में परितृप्त होते हैं। तीन टूक लँगोटी पहनकर और बिना नमक की सब्जी खा के भी आत्मज्ञानी आत्मदेव में परम तृप्त होते हैं।

स तृप्तो भवति। स अमृतो भवति।
स तरति लोकांस्तारयति।
(नारदभक्तिसूत्र : ४ व ५०)
तस्य तुलना केन जायते।
(अष्टावक्र गीता : १८.८९)

उस आत्मज्ञान के सुख में सुखी महापुरुष के दर्शन से साधक, सज्जन, धर्मात्मा उन्नत होते हैं, परितृप्त होते हैं और उन महापुरुष को माननेवाले गुरुभक्त देर-सवेर सफल हो जाते हैं। भगवान शिवजी ने कहा है :

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता॥

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती धन्य है !'

उपासना से इन सब लाभों की प्राप्ति तभी हो सकती है जब सच्चे मन, श्रद्धा एवं भावना से उपासना की जाय। जैसे जमीन की गहराई में जाने से बहुमूल्य पदार्थों की प्राप्ति होती है, ठीक वैसे ही श्रद्धापूर्वक ईश्वरोपासना द्वारा अंतर्मन में उतरने से दैवी सम्पदा प्राप्त होती है।

उपासना की मूल भावना यही है कि जल की तरह निर्मलता, विनम्रता, शीतलता, फूल की तरह प्रसन्न एवं महकता जीवन, अक्षत की तरह अटूट निष्ठा, नैवेद्य की तरह मिठास-मधुरता से युक्त चिंतन व व्यवहार, दीपक की तरह स्वयं व दूसरों के जीवन में प्रकाश, ज्ञान फैलाने का पुरुषार्थ अपनाया जाय।

भगवान श्रीकृष्ण गीता (१८.४६) में कहते हैं :

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

'उस परमेश्वर की अपने कर्मों से पूजा करके मनुष्य सिद्धि (स्वतः अपने आत्मस्वरूप में स्थिति) प्राप्त करता है।'

पूज्य बापूजी कहते हैं : ''पूजा-अभिषेक में ४० किलो दूध चढ़ाओ या ४० ग्राम, पर पूजा करते-करते तुम मिटते जाते हो कि बनते जाते हो, ईश्वर में खोते जाते हो कि अहंकार में जगते जाते हो - इसका खयाल करो तो बेड़ा पार हो जायेगा। शिवजी तुम्हारे चार पैसे के दूध के भूखे हैं क्या ? तुम्हारे घी और शक्कर के भूखे हैं क्या ? नहीं... वे तुम्हारे प्यार के, उन्नति के भूखे हैं। प्यार करते-करते तुम खो जाओ और तुम्हारे हृदय में शिव-तत्त्व प्रकट हो जाय। यह है पूजा का रहस्य !''

एक बार चैतन्य महाप्रभु से एक श्रद्धालु ने पूछा : ''गुरुदेव ! भगवान सम्पन्न लोगों की पूजा से संतुष्ट नहीं हुए और गोपियों की छाछ व विदुर के शाक उन्हें पसंद आये। लगता है पूजा के पदार्थों से उनकी प्रसन्नता का संबंध नहीं है।''

चैतन्य महाप्रभु : ''ठीक समझे वत्स ! प्रभु के ही बनाये हुए सभी पदार्थ हैं फिर उन्हें किस बात की कमी ? वास्तव में पूजा तो साधक के भाव-जागरण की पद्धति है। वस्तुएँ तो प्रतीकमात्र हैं, उनके पीछे छिपा हुआ भाव भगवान ग्रहण करते हैं। **भावग्राही जनार्दनः।** पूजा में जो-जो वस्तुएँ भगवान को चढ़ायी जाती हैं, वे इस बात का भी प्रतीक हैं कि उन पूजा-सामग्रियों को निमित्त बनाकर हम अपने पंचतत्त्वों से बने तन, तीन गुणों में रमण करनेवाले मन, बुद्धि, अहं, इन्द्रिय-व्यवहार को किस प्रकार उन्हें अर्पण कर अपने अकर्ता-अभोक्ता स्वभाव में जग जायें।'' ❐

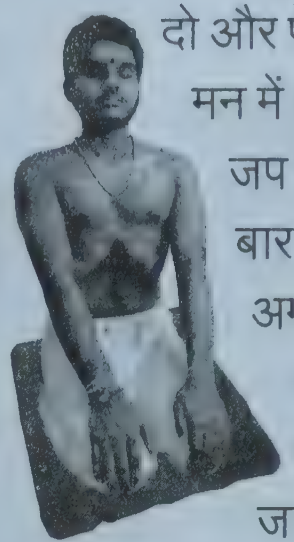
स्वास्थ्यरक्षक दैवी उपाय - पूज्य बापूजी

औषधि से भी उपचार होता है, मंत्र व सूर्यकिरणों से भी होता है। कई चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं - प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी), एलोपैथी आदि। जीवों को सता के, किसीकी हत्या, हिंसा आदि करके जो भी उपचार होता है, वह राक्षसी उपाय है और अपना मनोबल, बुद्धिबल, मंत्रबल, दैवबल और सूझबूझ के बल से जो स्वास्थ्य-लाभ होता है, वह दैवी उपाय है।

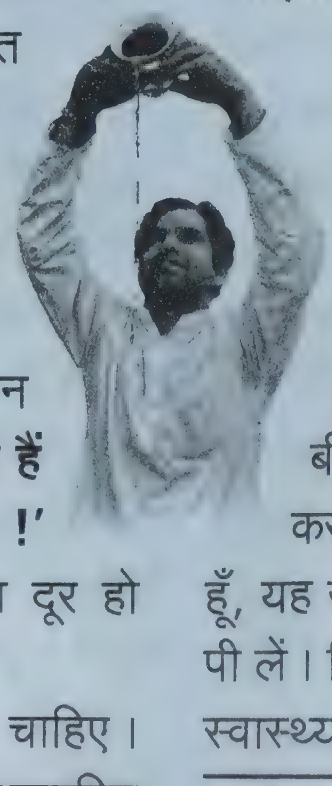
तुम नित्य-शुद्ध-बुद्ध चैतन्य परमात्मा के अभिन्न स्वरूप हो। रोग, बीमारी और मुसीबत आ जायें तो डरो मत। रोग आये तो मन को कर लो एकाग्र कि 'रोग आया है। जो आता है वह जाता है। कई बार रोग आये और गये।' चित्त को कर दो प्रसन्न कि 'यह असावधानी मिटाने को, संयम सिखाने को, तपस्या कराने को आया है।' और बुद्धि को कर दो निर्भीक कि 'यह शरीर शाश्वत नहीं तो रोग भी शाश्वत नहीं हो सकता। मन की अवस्था एक जैसी नहीं रहती तो रोग की अवस्था भी एक जैसी नहीं रहेगी। लेकिन मैं सदा एकरस हूँ... प्रेमस्वरूप, आनंदस्वरूप, शांतस्वरूप ! शरीर के रोगों को और मन के उद्वेगों व विकारों को जाननेवाले **हम हैं अपने-आप, हर परिस्थिति के बाप !'** रोग, बीमारियों और कष्टों का प्रभाव दूर हो जायेगा यूँ चटाक-से !



रात को देर से भोजन नहीं करना चाहिए। जितनी देर से भोजन करोगे उतना अम्लपित्त (hyperacidity), अजीर्ण होता है। सुबह-शाम खाली पेट वज्रासन★ में बैठो, श्वास बाहर निकाल दो और पेट को २५ बार अंदर-बाहर करो। मन में अग्निदेव के बीजमंत्र **'रं-रं...'** का जप करो, फिर श्वास ले लो। ऐसा ५ बार करो, कितनी भी मंदाग्नि हो, अम्लपित्त हो और कंधे आदि में (कच्चे रस के कारण) जकड़न या दर्द होता हो, सब अपने-आप दूर हो जाता है।



ये सब दैवी उपाय हैं। नहीं तो कैप्सूल खाओ, ऑपरेशन कराओ...। यह सब कराने के बाद भी क्या होता है ? रोग के ऊपर चादर पड़ जाती है। तुम दैवी उपाय करो न, काहे को राक्षसी उपाय करना ? काहे को मानवीय उपायों में भी दवाइयाँ खाना ?



कैसी भी बीमारी हो, सूर्यनारायण को अर्घ्य दें और अर्घ्य से गीली हुई मिट्टी का तिलक करें और अर्घ्य-पात्र में बचा हुआ थोड़ा-सा जल हाथ में ले के चिंतन करें : **'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः। ॐ आरोग्यप्रदायकाय सूर्याय नमः।** (यह बीजसंयुक्त मंत्र है।) मेरे आरोग्य की रक्षा करनेवाले सूर्य भगवान की मैं उपासना करता हूँ, यह जल पान करता हूँ।' और उस पानी को पी लें। फिर नाभि में सूर्यनारायण का ध्यान करें, स्वास्थ्य-मंत्र जपें और बल का चिंतन करें।

★ **विधि हेतु पढ़ें आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'योगासन'**

ॐ सूर्याय नमः । ॐ भानवे नमः । ॐ खगाय नमः । ॐ रवये नमः । ॐ अर्काय नमः ।... आदि मंत्रों से सूर्यनमस्कार करने से व्यक्ति ओजस्वी-तेजस्वी व बलवान बनता है, बुद्धि की बढ़ोतरी होती है ।



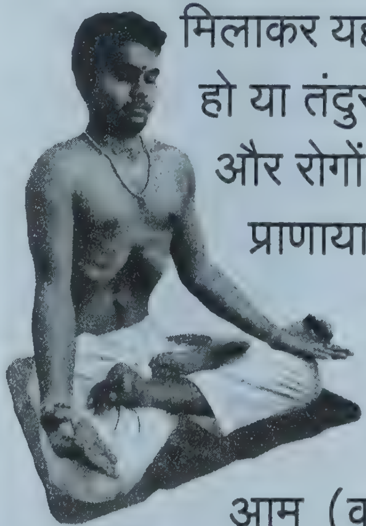
हनुमानजी, भीष्मजी अथवा मेरे गुरुजी के श्रीचित्र को एकटक देखें । नहीं तो अपने सद्गुरुदेव को ही देख लेना । काहे को डरना ! 'मैं निरोग हो रहा हूँ बापू ! मैं निरोग हो रहा हूँ न ?' बापू बोलेंगे : 'क्यों नहीं, हो रहा है, हो रहा है ।' - ऐसा करते-करते दैवी उपचार से, अंतरात्म-बल से आप निरोग हो सकते हो, बिल्कुल पक्की बात है ! यह ऐसा जादू है कि मन-बुद्धि में अगर आप ठान लो तो बिना दवाई के अथवा सामान्य दवाई से आपके संकल्प के अनुसार हो जायेगा ।

आरोग्य व सामर्थ्य प्रदायक नित्य करणीय कुछ प्रयोग

रोगों को भगाने व दीर्घायु हेतु

बायाँ नथुना बंद करके दायें नथुने से खूब गहरा श्वास लो, फेफड़ों की शक्ति को बढ़ाओ । इससे रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ेगी, आरोग्यशक्ति बढ़ेगी । श्वास भीतर रोको (६ से १२ सेकंड) और मन में 'ॐ... ॐ...' जपो और आरोग्य का भाव करो कि 'ॐ की शक्ति का प्राकट्य और आरोग्यशक्ति का विकास हो रहा है ।' फिर दायाँ नथुना बंद करके धीरे-धीरे बायें से छोड़ो । फिर बायें से लो, रोको और 'ॐ... ॐ...' जपो व आरोग्य का भाव करो । अब बायाँ नथुना बंद करके दायें से छोड़ो । दोनों मिला के एक प्राणायाम पूरा हुआ । ऐसे १० प्राणायाम करो । इससे दोनों नथुनों से श्वास समान रूप से चलने लगेगा ।

अंतर्कुम्भक-बहिर्कुम्भक प्राणायाम : अब दोनों नथुनों से खूब श्वास भरो । त्रिबंध करो - पेट को अंदर खींचो, गुदाद्वार को अंदर सिकोड़ लो और यथासम्भव सिर सीधा रखते हुए ठुड्डी को छाती से लगा लो । मन में ॐकार, गुरुमंत्र या भगवन्नाम का जप करते हुए सवा से पौने दो मिनट★ श्वास रोके रखो । अब धीरे-धीरे श्वास छोड़ो । फिर सामान्य गति से २-४ श्वासोच्छ्वास के बाद पूरा श्वास बाहर निकालकर ५० सेकंड से सवा मिनट★ उसे बाहर रोको । फिर धीरे-धीरे श्वास ले लो । श्वास लेते और रोके रखते समय मानसिक जप चालू रखें । बाह्य व आभ्यंतर कुम्भक मिलाकर यह १ प्राणायाम हुआ । बीमार हो या तंदुरुस्त हो, लम्बी उम्र के लिए और रोगों को भगाने के लिए ऐसे चार प्राणायाम अवश्य करने चाहिए । इससे प्राणबल, मनोबल, बुद्धिबल व रोगप्रतिकारक बल बढ़ेंगे । शरीर में जो भी आम (कच्चा, अपचित रस) होगा वह खिंच के जठर में स्वाहा हो जायेगा । वर्तमान की अथवा आनेवाली बीमारियों की जड़ें स्वाहा होती जायेंगी । आपका शरीर और मन निरोग तथा बलवान बन के रहेंगे ।

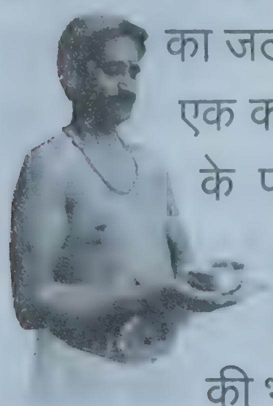


मनःशरीर और प्राण-शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय

पूर्ण आरोग्यता तो मनःशरीर और प्राण-शरीर दोनों को स्वस्थ रखने से ही मिलती है । इन दोनों शरीरों को स्वस्थ करने के लिए तीर्थस्थल के

★ नये अभ्यासी धीरे-धीरे समयावधि बढ़ाते हुए दिये गये समय तक पहुँचें ।

जलाशय में नहाते समय नाभि तक जल में खड़े हो जायें। दायें हाथ की अंजलि में जल लेकर उसे निहारते हुए १०० बार 'ॐ' का जप करें, फिर वह जल पी लें। तीर्थस्थल में नहीं हैं अथवा वहाँ का जल पीने योग्य नहीं है तो घर में ही एक कटोरी में जल लेकर सुबह स्नान के पश्चात् यह प्रयोग करें । चाँदी अथवा सोने की कटोरी हो तो अति उत्तम, नहीं तो ताँबे आदि की भी चलेगी। पानी को निहारते हुए 'ॐ' का जप करें । नेत्रों के द्वारा मंत्रशक्ति की तरंगें पानी में जायेंगी और 'ॐ' के जप से मनःशक्ति तथा प्राणशक्ति का विकास होगा ।



शारीरिक और मानसिक तनाव दूर करने के लिए

शारीरिक और मानसिक तनाव दूर करने के लिए सुंदर उपाय है - अजपा गायत्री। शरीर को खूब खींचें फिर ढीला छोड़ दें। मन-ही-मन चिंतन करें कि 'मैं स्वस्थ हूँ... शरीर की थकान मिट रही है...' इस प्रकार शारीरिक आराम लेकर फिर श्वासोच्छ्वास की गिनती करें (श्वास अंदर जाय तो 'ॐ' या भगवान का नाम... बाहर निकले तो '१'..., श्वास अंदर जाय तो 'आनंद' अथवा 'शांति'... बाहर निकले तो '२'...) । इससे शारीरिक एवं मानसिक तनाव मिटेंगे। लम्बी गिनती व 'शांति...', 'आनंद...' से अधिक लाभ होगा।

भगवद्-विश्रांति पाना चाहते हैं तो रोज सूर्योदय से पहले नहा-धोकर बैठ जायें और भगवन्नामसहित श्वासोच्छ्वास की गिनती करें। रात्रि को सब चिंता-तनाव ईश्वरार्पण करके भगवन्नाम के साथ श्वासोच्छ्वास की गिनती करते-करते सो जायें तो रात भी ईश्वरीय शांति का धन कमाने में बीतेगी। इन सहज युक्तियों से दिन भी सफल और रात भी ! ❐

यह समझ होगी तो पेट ठीक रहेगा

- पूज्य बापूजी

वस्तुएँ तो मेजबान की हैं लेकिन जितनी जरूरत है उतना खा, एक ग्रास कम खा। 'शादी-पार्टी का माल है' ऐसा सोचकर ज्यादा खाया तो फिर रात को छाती तपेगी, ओ ओ ओ... ! वस्तुएँ तो उनकी हैं पर पेट तो अपना बिगड़ेगा। खाना चबा-चबा के खाना चाहिए। कब खाना, कितना खाना, कैसे खाना - इसकी थोड़ी समझ होगी तो ठीक रहेगा। स्वास्थ्य की कुंजी समझाने के लिए एक कहावत है :

पेट नरम, पैर गरम, सिर को रखो ठंडा ।
घर में आये रोग तो मारो उसको डंडा ॥
फिर आये हकीम तो उसे दिखाओ डंडा ॥

जो पचता नहीं हो, जो रुचता नहीं हो उसको न खायें तथा जो रुचता हो और पचता न हो उसको भी ढंग से खायें और थोड़ा खायें। किंतु जो रुचता नहीं है पर शरीर के लिए अच्छा है और पचता है, उसको चाह से खायें और जो रुचता है उसको सँभल के खायें।

जो रुचता है उसे जल्दी-जल्दी खायेगा, ज्यादा खायेगा तो फिर करेगा 'ओ... ओ...' ! वह अंदर परेशान होगा भोजन। भोजन परेशान होगा इसलिए रोयेगा अंदर पेट में बैठा-बैठा 'ओ... ओ... ओ...' करके। अन्न ब्रह्म है और भोजन प्रसाद है। उसका और अपने जीवन का आदर करोगे तो तुम स्वस्थ रहोगे। ❐

तुम ऐसा जियो कि जिसको देखो, बस ईश्वर ही दिखे। ऐसा खाओ कि जो खाओ वह प्रसाद हो जाय। ऐसा विचारो कि जो विचारो वह ब्रह्मविचार हो जाय।

- पूज्य बापूजी

सुखमय जीवन की अनमोल कुंजियाँ

समस्त रोगनाशक उपाय

स्वास्थ्यप्राप्ति हेतु सिर पर हाथ रख के या संकल्प कर इस मंत्र का १०८ बार उच्चारण करें :

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

'हे अच्युत ! हे अनंत ! हे गोविंद ! - इस नामोच्चारणरूप औषध से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ... सत्य कहता हूँ ।'

● ज्वरनाशक मंत्र ●

इस मंत्र के जप से ज्वर दूर होता है :

ॐ भंस्मास्त्राय विद्महे । एकदंष्ट्राय धीमहि ।
तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ॥

卐 पुण्यदायी तिथियाँ 卐

२१ जून : निर्जला एकादशी (व्रत से अधिक मास सहित २६ एकादशियों के व्रत का फल; स्नान, दान, जप, होम आदि अक्षय फलदायी), दक्षिणायन आरम्भ (पुण्यकाल : सूर्योदय से सुबह ९:०३ तक) (ध्यान, जप व पुण्यकर्म कोटि-कोटि गुना अधिक व अक्षय फलदायी)

५ जुलाई : योगिनी एकादशी (महापापों को शांत कर महान पुण्यदायी तथा ८८००० ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्रदान करनेवाला व्रत)

८ जुलाई : चतुर्दशी-आर्द्रा नक्षत्र योग (रात्रि ८:५९ से ९ जुलाई प्रातः ५:१७ तक) (ॐकार का जप अक्षय फलदायी)

११ जुलाई : रविपुष्यामृत योग (सूर्योदय से रात्रि २:२२ तक)

१३ जुलाई : मंगलवारी चतुर्थी (सुबह ८:२५ से १४ जुलाई सूर्योदय तक)

(अधिक जानकारी हेतु आश्रमों में व समितियों के सेवाकेन्द्रों पर उपलब्ध कैलेंडर, डायरी लें ।)

बुखार दूर करने हेतु...

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान में ज्वर (बुखार) की चिकित्सा का विस्तृत वर्णन करने के बाद अंत में आचार्य श्री चरकजी ने कहा है :

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति ।

'हजार मस्तकवाले, चर-अचर के स्वामी, व्यापक भगवान की सहस्रनाम से स्तुति करने से अर्थात् विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने से सब प्रकार के ज्वर छूट जाते हैं ।'

(पाठ रुग्ण स्वयं अथवा उसके कुटुम्बी करें । 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' पुस्तक नजदीकी संत श्री आशारामजी आश्रम में व समितियों के सेवाकेन्द्रों से प्राप्त हो सकती है ।) ❑

विद्यालाभ व अद्भुत विद्वत्ता की प्राप्ति हेतु

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनि सरस्वति मम जिह्वाग्रे वद वद ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।' यह मंत्र २६ जून २०२१ को प्रातः ४:२६ से रात्रि ११:४५ बजे के बीच अथवा २३ जुलाई २०२१ को दोपहर २:२६ से रात्रि ११:४५ बजे के बीच १०८ बार जप लें और फिर मंत्रजप के बाद उसी दिन रात्रि ११ से १२ बजे के बीच जीभ पर लाल चंदन से **'ह्रीं'** मंत्र लिख दें । जिसकी जीभ पर यह मंत्र इस विधि से लिखा जायेगा उसे विद्यालाभ व अद्भुत विद्वत्ता की प्राप्ति होगी ।

(ध्यान दें : गुजरात व महाराष्ट्र में यह योग केवल २३ जुलाई को है ।)

...तभी साधक अपने परम लक्ष्य तक पहुँच पाता है

परमानंदस्वरूप परमात्मा के योग-पथ में आनेवाली किसी भी कठिनाई पर विजयी होने के लिए सबसे पहले उत्साह साथ देता है। लेकिन कुछ आगे बढ़ने पर उत्साह में शिथिलता आने लगती है, वहीं पर साहस की सहायता से मंद उत्साही व्यक्ति में नवस्फूर्ति आ जाती है। किंतु कहीं-कहीं ऐसे भी स्थल आते हैं कि जहाँ पर यात्री का साहस भी शिथिल होने लगता है, तब वहाँ धैर्य अपनी प्रबल शक्ति से साधक को सँभाल लेता है और यदि इसका तिरस्कार न किया जाय तो यह धैर्य साधक को उसके गंतव्य स्थल तक कभी-न-कभी पहुँचा ही देता है। इस प्रकार सामयिक सुविधाओं के होते हुए साधक को ध्यान रखना चाहिए कि योग के पथ में निरंतर प्रयत्न कहीं मंद न हो जाय और इस सावधानी के लिए ब्रह्मवेत्ता संत-सद्गुरु का अटूट संबंध बने रहना परमावश्यक है।

उत्साह से यात्री गतिशील होता है, साहस से गति में स्फूर्ति मिलती है, धैर्य से किसी प्रकार के आकस्मिक आघातों-प्रत्याघातों को सहने की दृढ़ता आती है। इसी प्रकार सतत प्रयत्न से विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त होती है और ब्रह्मवेत्ता संत-सद्गुरुदेव के सुसंग से प्राप्त हुए ज्ञान के द्वारा सत्य के लक्ष्य में अविचल दृष्टि रहती है, तभी साधक अपने परम लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

विशोको निर्ममः शान्तः प्रसन्नात्मा विमत्सरः
सुसन्तुष्टः यो ज्ञानात् समग्रः पुनरेभ्यति ॥

'संतोषी, ममतारहित, शांत, प्रसन्न मनवाला और शोक तथा मत्सर (ईर्ष्या, द्वेष) रहित - इन छः लक्षणोंवाला पुरुष ज्ञान से तृप्त होकर मुक्ति को पाता है।' □

हलकी आदतें, चिंतित स्वभाव, बीमारी आदि सब गायब !

- पूज्य बापूजी

दवाइयों से रोग नहीं मिटते, दवाइयाँ तो निमित्त होती हैं, रोग तो आपकी पुण्याई से और आपकी रोगप्रतिकारक शक्ति से मिटते हैं। अगर दवाइयों से ही रोग मिटते होते तो जवान का ऑपरेशन होने पर थोड़े दिनों में घाव क्यों ठीक होता और बूढ़े व्यक्ति का वही ऑपरेशन होने पर घाव ठीक होने में ज्यादा दिन क्यों लगते हैं ? बूढ़े व्यक्ति की बीमारी मिटने में ज्यादा दिन क्यों लगते हैं और जवान की बीमारी जल्दी क्यों मिटती है ? जिनकी रोगप्रतिकारक शक्ति, प्राणशक्ति, मनःशक्ति दुर्बल है उनके रोग देर से मिटते हैं और जिनकी मनःशक्ति, प्राणशक्ति सबल है उनको रोग होते नहीं और कभी हो भी जायें तो जल्दी मिट जाते हैं।

यह तो एलोपैथी के डॉक्टरों को भी मानना पड़ेगा, वैज्ञानिकों को भी मानना पड़ेगा और आस्तिक जगत के लोग तो मानते ही हैं। आपमें विचारशक्ति का बल है। दुनिया में कई शक्तियाँ हैं - विद्युत शक्ति है, परमाणु (atomic) शक्ति है... तमाम शक्तियाँ हैं। उन सब शक्तियों की ऐसी-तैसी करनेवाली आपकी विचारशक्ति है।

जो मुसीबतों से, दुःखों से डरते रहते हैं वे दुःखों से दबे रहते हैं। तो 'महाराज ! दुःख तो हमारे पास बहुत हैं, हम तो दुःखों से डर रहे हैं।' नहीं। लम्बा श्वास लो, भगवान के नाम का उच्चारण करो। जितने मिनट उच्चारण करो उसके आधे मिनट चुपचाप बैठो और मानसिक उच्चारण होने दो। कितनी भी हलकी आदत होगी, कितना भी डरावना स्वभाव होगा, चिंतित स्वभाव होगा - बीमारी का, तनाव का, वह सब थोड़े दिनों में गायब हो जायेगा। □

निरापद वटी



संक्रमण से बचाये, बुखार, कफ, खाँसी, कमजोरी भगाये

संशमनी वटी

रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाकर संक्रामक रोगों से रक्षाप्रद। सभी प्रकार के बुखार, खाँसी, सर्दी, बीमारी के बाद की कमजोरी, खून की कमी आदि में लाभदायी



अमृत द्रव



संक्रमण से रक्षा हेतु इसकी कुछ बूँदें कपड़े या रूई के फाहे पर ले के सूँघें।

हैंड सैनिटाइजर

कहीं भी, कभी भी... साबुन और पानी की अनुपलब्धता में भी रखे हाथों को कीटाणुमुक्त





कफ सिरप

सर्दी, सूखी व कफयुक्त खाँसी, दमा आदि श्वसन-तंत्र के सभी विकारों में लाभदायी

कपूर

* संक्रामक रोगों से सुरक्षा हेतु कपूर की पोटली बनाकर उसे सूँघना लाभदायी
* पूजा, आरती आदि धार्मिक कार्यों में उपयोगी
* वातावरण को शुद्ध करनेवाला



...६ से भी अधिक बहुमूल्य वनौषधियों से युक्त

च्यवनप्राश

दीर्घायु, चिरयौवन, प्रतिभाशक्ति प्रदायक तथा दुर्बलता, फेफड़ों, मूत्राशय व हृदय के रोगों में विशेष लाभकारी



अश्वगंधा टेबलेट



बुखार आदि के बाद आयी कमजोरी दूर करने हेतु उत्तम बल-पुष्टिवर्धक, स्नायुओं व मांसपेशियों को ऊर्जा-प्रदायक तथा कद बढ़ानेवाली

वज्र रसायन टेबलेट

बुखार उतरने के बाद आयी कमजोरी दूर करने हेतु १ गोली रोज दूध या शहद के साथ लेना विशेष लाभदायी



नयी सौगात

तुलसी बीज, सौंफ, इलायची व जावित्री युक्त

आँवला-चुकंदर शरबत

बाँटने हेतु ५० लीटर या उससे अधिक यह शरबत प्लास्टिक की केन में ५० रुपये प्रति लीटर की किफायती दर से मिलेगा।

प्राप्ति हेतु सम्पर्क : ९३७७७७५७१०



wt. = Net weight

स्वादिष्ट

अमरूद चटनी



* सत्त्वगुण, भूख, बुद्धि व वीर्य वर्धक, शक्तिदायक
* वायु व पित्त शामक
* थकान को दूर करनेवाली
* पेट की बीमारियों में विशेष लाभकारी

उपरोक्त सामग्री संत श्री आशारामजी आश्रमों में व समितियों के सेवाकेन्द्रों से प्राप्त हो सकती है। अन्य उत्पादों व सभीके विस्तृत लाभ आदि की जानकारी के लिए गूगल प्ले स्टोर से डाउनलोड करें : "Ashram eStore" App या विजिट करें : www.ashramestore.com या सम्पर्क करें : (०७९) ६१२१०७३०, ९२१८११२२३३. ई-मेल : contact@ashramestore.com

बाँटना स्वभाव बना है बापूजी के प्यारों का,
इस बार निमित्त बना है अवतरण दिवस का

भोजन-प्रसाद, सब्जियाँ, राशन व अन्य सामग्री का वितरण

RNI No. 48873/91
RNP. No. GAMC 1132/2
(Issued by SSPOs Ahd, valid upto 3
Licence to Post without Pre-p
WPP No. 08/21-23
(Issued by CPMG UK. valid upto 3
Posting at Dehradun G.P.O.
1st to 17th of every mo
Date of Publication: 1st Ju



To,
के के कुरामी
E-19 मधुबन कालोनी
नाका मदार अजमेर 305007

क तस्वीरों हेतु वेबसाइट www.ashram.org/sewa देखें।

हरिद्वार में विभिन्न स्थानों पर स्वास्थ्यरक्षक आयुर्वेदिक काढ़ा व साधुओं में दक्षिणा का भी वि



डाउनलोड करें "Rishi Prasad" व "Rishi Darshan" Apps - Google play Store